ISSN 2319-2798

राजभाषा पत्रिका
अंक 13, 2023-24

हिमप्रभा

गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान
(पर्यावरण वन एवम् जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड
वेबसाइट: http://gbpihed.gov.in

अंक-13 | 2023-24
ISSN- 2319-2798

हिमप्रभा

राजभाषा पत्रिका

गो0ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान
(पर्यावरण वन एवम् जलवायु परिर्वतन मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा
Website:http://gbpihed.gov.in

राजभाषा पत्रिका

हिमप्रभा

अंक-13
ISSN- 2319-2798

वर्ष - 2023-24

संरक्षक/अध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वयन समिति
प्रो0 सुनील नौटियाल, निदेशक

राजभाषा कार्यान्वयन समिति/सम्पादक मंडल

ई0 महेन्द्र लोधी	-सदस्य
डा0 सुबोध ऐरी	-सदस्य
डा0 आशीष पाण्डे	-सदस्य
श्री0 महेश चन्द्र सती	-सदस्य

कार्यकारी सम्पादक
डा0 सुबोध ऐरी
09411525550
airisubodh@gmail.com

सहयोग
श्री विपिन शर्मा

विशेषः
हिमप्रभा में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आकड़ों आदि के लिए लेखक पूर्ण रुपेण स्वयं उत्तरदायी हैं। राजभाषा कार्यान्वयन समिति का उनसे सहमत होना आवश्यक नही है।

प्राक्कथन

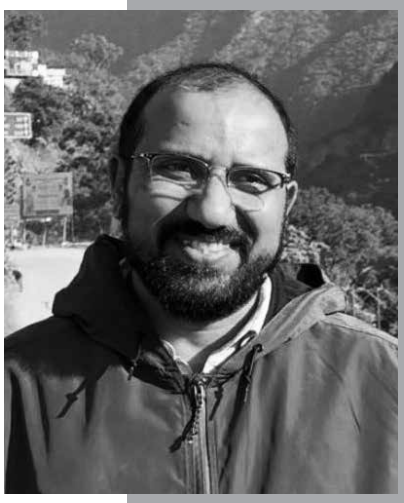

एक भाषा के रूप में हिंदी न सिर्फ भारत की पहचान है बल्कि यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कृति एवं संस्कारों की सच्ची संवाहक और परिचायक भी है। हिंदी सरल, सहज और सुगम भाषा होने के कारण इसे दुनिया भर में समझने, बोलने और चाहने वाले लोग बहुत बड़ी संख्या में मौजूद हैं। यह विश्व में तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है जो हमारे पारम्परिक ज्ञान, प्राचीन सभ्यता और आधुनिक प्रगति के बीच एक सेतु भी है।

केंद्र सरकार के कार्यालयों में हिंदी का अधिकाधिक उपयोग सुनिश्चित करने हेतु भारत सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा उठाए गए कदमों के परिणामस्वरूप कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य करना अधिक आसान एवं सुविधाजनक हो गया है। सभी मंत्रालयों और विभागों ने अपनी वेबसाइटें हिंदी में भी तैयार कर ली हैं। सरकार के विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों द्वारा संचालित जन कल्याण की विभिन्न योजनाओं की जानकारी आम नागरिकों को हिन्दी में मिलने से गरीब, पिछड़े और कमजोर वर्ग के लोग भी लाभान्वित होते हुए देश की मुख्याधारा से जुड़ रहे हैं।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह संस्थान भी जन सामान्य से सीधे जुड़ने हेतु अपने शोध एवं विकास क्रियाकलापों के निष्कर्षों को विगत कई वर्षों से हिंदी भाषा में तैयार करता आ रहा है। आजीविका संवर्धन, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन तथा जैविविधता संरक्षण सम्बन्धी जागरूकता व प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि हिंदी भाषा में ही संपन्न किये जाते हैं। विभिन्न हितधारकों के प्रशिक्षण और पर्यावरणीय शिक्षा कार्यक्रमों को संस्थान के ग्रामीण तकनीकी केंद्र तथा प्रकृति अध्ययन व विश्लेषण केंद्र से हिंदी भाषा के माध्यम से चलाया जाता है।

मुझे इस बात की ख़ुशी है कि संस्थान के वैज्ञानिक तथा शोध छात्र निरंतर इस पत्रिका के माध्यम से अपने शोध परिणामों को प्रकाशित करने हेतु रूचि ले रहे हैं। इसके अतिरिक्त संस्थान का प्रशासनिक कार्य भी अब पूर्णतः हिंदी में होने लगा है इसके लिए मैं संस्थान के सभी वैज्ञानिकों, कर्मचारियों तथा शोध छात्रों को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी इसी तरह हिंदी के प्रति रूचि बनायें रखेंगे। इन्ही विचारों के साथ संस्थान की हिंदी पत्रिका "हिमप्रभा" का 13वां अंक पाठकों को सोंपते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। हिमप्रभा के इस अंक में प्रमुख रूप से भारतीय हिमालय क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं पर संस्थान के मुख्यालय के साथ साथ पांच क्षेत्रीय केंद्र के वैज्ञानिकों द्वारा किये गए शोध कार्यक्रमों में मिली सफलताओं की जानकारी दी गयी है, जो पाठकों के ज्ञानवर्धन हेतु उपयोगी हो सकती हैं। मैं संस्थान की राजभाषा समिति के सभी सदस्यों तथा इस अंक में समाहित विभिन्न रचनाओं के रचनाकर्ताओं को बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि इससे संस्थान को राजभाषा के प्रति अपने दायित्वों के निर्वहन में सफलता मिलेगी। इस पत्रिका को और अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु संस्थान की राजभाषा समिति आपके बहुमूल्य सुझावों का स्वागत करती है।

शुभकामनाओं सहित।

निदेशक
प्रो0 सुनील नौटियाल

अनुक्रम

क्र. संख्या	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	**भूमि सतह तापमान और वनस्पति सूचकांक के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का मूल्यांकनः सैंज घाटी का एक अध्ययन** धर्म चन्द, रेनूलता, किशोर कुमार राकेश कुमार सिंह	07
2.	**हिमालय क्षेत्रः पर्यावरण और विकास की दिशा में चुनौतियाँ और अवसर** हेमचन्द्र जोशी	11
3.	***एकोनिटम हेटेरोफिलम* (अतीस): एक लुप्तप्राय उच्च मूल्य हिमालयी औषधीय पादप** विनोद कुमार, किशोर कुमार, खिलेन्द्र सिंह कनवाल	14
4.	**लद्दाख के ऊंचाई पर स्थित एक गांव में कृत्रिम बर्फ जलाशय के माध्यम से पानी की मांग और आपूर्ति का संतुलन** पुरुषोत्तम कुमार गर्ग, अजय कुमार गुप्ता और संदीपन मुखर्जी, विनोद कोठारी और निखलेश पंत	18
5.	**भारतीय हिमालयी क्षेत्र मे जल सरंक्षण में स्थानीय उपाय और परंपरागत ज्ञान का महत्व** साक्षी ठाकुर, राकेश कुमार सिंह, रेनू लता	21
6.	**जल संरक्षण के माध्यम से संवेदनशील हेडवाटर जल संसाधनों की सुरक्षा** सौखिन तरफदार	24
7.	**भारतीय हिमालय क्षेत्र में बाढ़ खतरा प्रबंधनः रोकथाम, चुनौतियाँ और समाधान** डिम्पल कुमारी, राकेश कुमार सिंह, रेनू लता	26
8.	**युवा पीढ़ी और सामाजिक परिवर्तन-आधुनिक परिप्रेक्ष्य में** महेश चन्द्र सती	29
9.	**पूर्वोत्तर भारत में संकटग्रस्त स्तनधारी जीवों की स्थिति** विशाल कुमार माझी, सौमिक महापात्र, शिवम कुमार, मृगांक शेखर सरकार	32
10.	**फाइटोरिमेडिएशन डंपिंग ज़ोन के लिए एक स्थायी समाधान** प्रियांशु बिशन, अंशु कुमारी, हरिप्रिया शाह, सतीष चन्द्र आर्य	37
11.	**राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा वर्ष 2023 में आयोजित कार्यशालाएंः सूक्ष्म परिचय** महेश चन्द्र सती	40
12.	**राजभाषा हिन्दी पखवाड़ा के अन्र्तगत पुरस्कृत कविताऐं**	42
13.	**राजभाषा हिन्दी पखवाड़ा के अन्र्तगत आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताएं/कार्यक्रम**	46
14.	**क्षेत्रीय कार्यान्वन कार्यालय (उत्तरी क्षेत्र-2), के सहायक निदेशक (कार्यान्वन) द्वारा संस्थान के राजभाषा संबंधी निरीक्षण की झलकियॉ**	48

भूमि सतह तापमान और वनस्पति सूचकांक के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का मूल्यांकनः सैंज घाटी का एक अध्ययन

धर्म चन्द, रेनूलता, किशोर कुमार, राकेश कुमार सिंह
गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र, मौहल-कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

जलवायु परिवर्तन, वनस्पति सूचकांक और भूमि सतह तापमान की मानिटरिंग से पर्यावरणीय परिवर्तन का विश्लेषण करना आवश्यक है ताकि हम संतुलित वातावरण के लिए कदम उठा सकें। भूमि सतह तापमान सूदूर-संवेदन द्वारा मापी गई पृथ्वी की सतह के तापमान को प्रस्तुत करता है। जिस तरह से लगातार मानव गतिविधियों के कारण वैश्विक तापमान में वृद्धि हो रही है, भूमि सतह तापमान इस वृद्धि का वास्तविक मापन प्रदान करता है। कृषि प्रणालियों पर भी बदलते भूमि सतह तापमान का प्रभाव होता है, जिससे खाद्य उत्पादन और आपूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। वनस्पति सूचकांक की निगरानी का महत्व पर्यावरणीय अनुसंधान और वन्यजीव विज्ञान में होता है। यह पैरामीटर पौधों और वन्यजीवन की स्वास्थ्य और प्रदर्शन का मूल्यांकन करने में मदद करता है। वनस्पति सूचकांक उच्च संख्याओं का संकेत देता है, जो वन्यजीवन के आर्द्रता और वृक्षों के प्रति प्रवृत्ति की दर्शाती हैं। यह वृक्षों और अन्य पौधों की वृद्धि, वन्यजीव समृद्धि और पर्यावरणीय गुणवत्ता की जांच के लिए महत्वपूर्ण टूल है।वनस्पति सूचकांक के विश्लेषण से प्राप्त डेटा से हम वन्यजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रदर्शन की मापकता और उनकी उपस्थिति की मात्रा को समझ सकते हैं। यह वन्यजीव संरक्षण, वन्यजीवन की न्यूनतम संरचना, और वन्यजीवन के संरक्षण के लिए आवश्यक महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। इसके अलावा, यह कृषि और वन्यजीवन से जुड़े निर्णय लेने में सहायता प्रदान करता है, जैसे की अनुभवी कृषि व्यवसायियों को फसलों के लिए बेहतर निर्णय लेने में मदद करना। वनस्पति सूचकांक की निगरानी के आधार पर पर्यावरणीय संरचना को समझने में सक्षम होते हैं और एक स्वस्थ पर्यावरण के लिए उपयुक्त कदम उठाने में मदद करते हैं। भूमि सतह तापमान और वनस्पति सूचकांक डेटा को एकत्र करने से पौधों की गतिविधि और तापमान के परिवर्तन के बीच संबंध को समझने में काम आता है। उच्च वनस्पति सूचकांक मूल्य और कम भूमि सतह तापमान के संयोजन से यह दिखता है कि वन्यजीवन स्वस्थ है और मात्रात्मक वातावरण है, जबकि कम वनस्पति सूचकांक और उच्च भूमि सतह तापमान तनावित वन्यजीवन और उच्च तापमान का संकेत दे सकते हैं। यह एकीकरण पर्यावरणीय मॉनिटरिंग में मदद करता है, जो पर्यावरणीय मॉनिटरिंग, प्रबल और विश्वसनीय जलवायु परिवर्तन कमी की रणनीतियों में सार्थक मदद करता है। समग्र रूप से, वनस्पति सूचकांक और भूमि सतह तापमान की मॉनिटरिंग पर्यावरण प्रबंधन और वैश्विक हित के प्रति एक सतत और संतुलित दृष्टिकोण को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अध्ययन क्षेत्र

सैंज कुल्लू जिला मुख्यालय से 49 किलोमीटर दूर है। सैंज घाटी का क्षेत्रफल 528.99 किमी0 है। अध्ययन क्षेत्र 981 मीटर से 5,366 मीटर की ऊंचाई

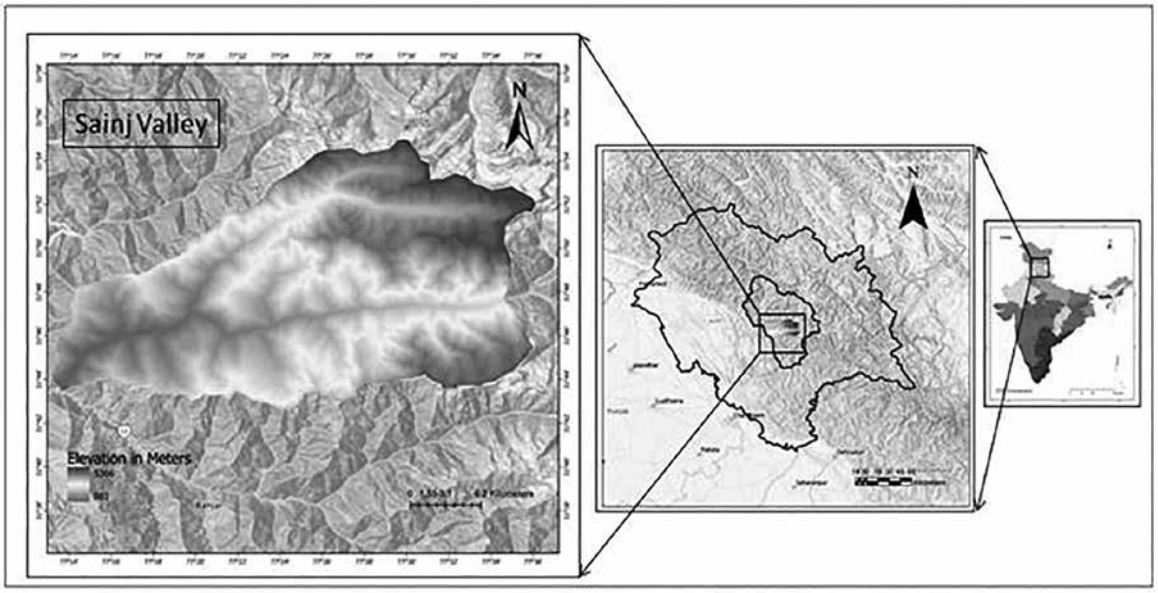

सैंज घाटी का अध्ययन क्षेत्र मानचित्र

सीमा के भीतर स्थित है। सैंज घाटी ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क की निचली श्रेणियों में स्थित है। सैंज घाटी शांतिपूर्ण, लुभावन अनुभव प्रदान करती है। सैंज नदी सैंज घाटी से बहने वाली मुख्य नदी है। सैंज नदी रक्तिसर ग्लेशियर (5,500 मीटर) से निकलती है और वहां से दक्षिण-पश्चिम दिशा की ओर बहती हुई लारजी गांव में Cयास नदी में मिल जाती है। हालांकि यहां पर कई पनविद्युत परियोजनाएँ है फिर भी यह प्राकृतिक सुंदरता की पूरी महिमा को बरकरार रखता है।

विधि

अध्ययन क्षेत्र के भूमि सतह तापमान की गणना के लिए MODIS के उत्पाद (MODIS/061/MOD11A1) तथा "गूगल अर्थ इंजन" का उपयोग किया गया है। भूमि सतह तापमान को °C में गणना करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया गया है।

$$C = K - 273.15$$

अध्ययन क्षेत्र के वनस्पति सूचकांक की गणना के लिए MODIS के उत्पाद (MODIS/061/MOD13Q1) तथा "गूगल अर्थ इंजन" का उपयोग किया गया है।

परिणाम

सैंज घाटी में भूमि सतह तापमान (2014 तथा 2022)

वर्ष 2014 और 2022 के भूमि सतह तापमान डेटा का विश्लेषण करते समय, दिन और रात के तापमान के मान निकाले गए। दोनों वर्षों के लिए माध्य, अधिकतम, न्यूनतम, मानक विचलन (SD) और मानक त्रुटि (SE) की गणना की गई। 2014 में, दिन के दौरान औसत भूमि सतह तापमान 10.95°C था, जबकि रात के समय यह -2.75°C था। दिन के दौरान उच्चतम भूमि सतह तापमान 24.58°C था, और रात के समय यह 12.17°C था। दूसरी ओर, दिन के दौरान और रात के समय न्यूनतम भूमि सतह तापमान-12.80°C और -43.97°C था। दिन के समय भूमि सतह तापमान के लिए मानक विचलन (SD) 7.55°C था और रात के समय भूमि सतह तापमान के लिए यह 11.38°C था। मानक त्रुटि (SE) दिन के लिए 0.44°C

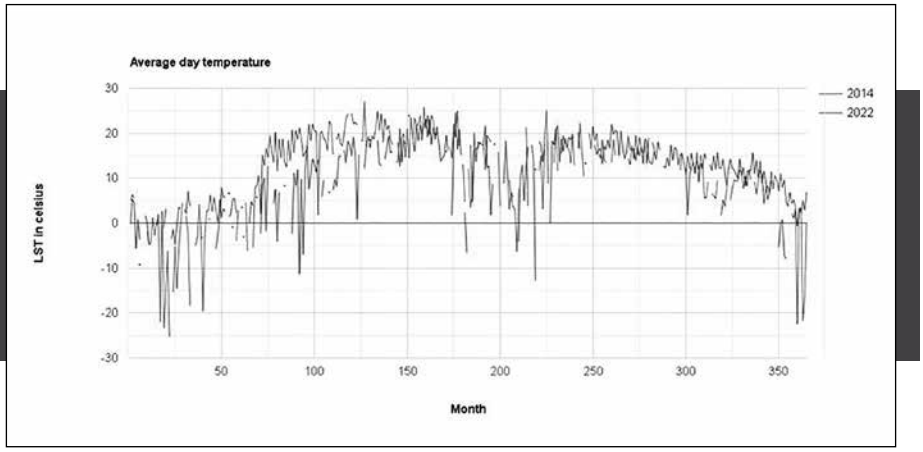

औसत दिन वार्षिक भूमि सतह तापमान (2014 तथा 2022)

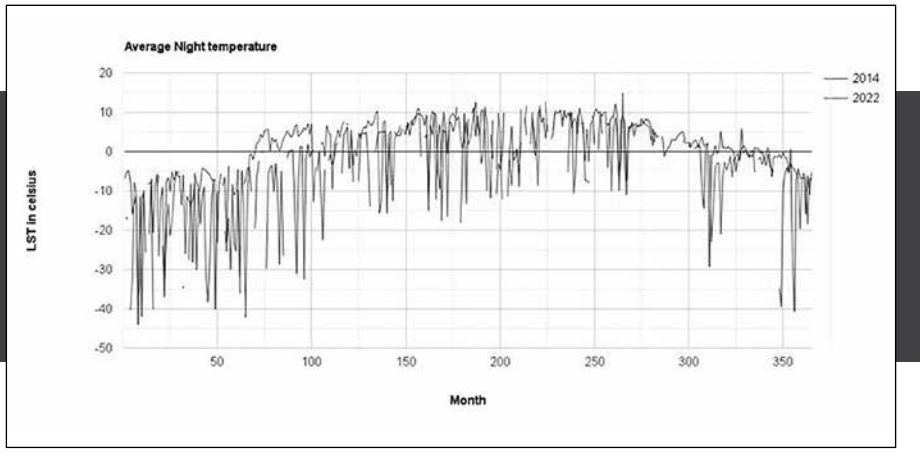

औसत रात वार्षिक भूमि सतह तापमान (2014 तथा 2022)

और रात के लिए 0.63°C था। वर्ष 2022 में 2014 के मुकाबले औसत भूमि सतह तापमान में थोड़ी सी वृद्धि हुई। दिन के समय औसत भूमि सतह तापमान 11.22°C था, और रात के समय यह -1.23°C था। दिन के समय उच्चतम भूमि सतह तापमान रेकॉर्ड 27.00°C था, और रात के समय यह 14.91°C था। दिन के और रात के समय न्यूनतम भूमि सतह तापमान -25.239°C और -42.13°C था। दिन के समय भूमि सतह तापमान के लिए मानक विचलन (SD) 9.85°C था और रात के समय यह 9.92°C था। मानक त्रुटि (SE) दिन के लिए 0.57°C और रात के लिए 0.54°C था। दोनों वर्षों की तुलना करते समय, स्पष्ट है कि 2022 में दिन और रात के दौरान औसत भूमि सतह तापमान में वृद्धि हुई। उच्चतम भूमि सतह तापमान भी बढ़ गया, जिससे संग्रहण की ऊँची तापमान की इंगीत होती है। न्यूनतम भूमि सतह तापमान में कमी दिखाई दी, जिससे सूझता है कि 2022 में यहां तक कि 2014 के मुकाबले न्यूनतम तापमान थोड़ा अधिक था। मानक विचलन और मानक त्रुटि डेटा की विविधता और सटीकता के परिप्रेक्ष्य में अवलोकन प्रदान करते हैं, जिससे उन्हें बताया जा सकता है कि प्रासंगिक वर्षों में मापनों की संघटन और विश्वसनीयता का अनुभव सहज और नियमित था। इन भूमि सतह तापमान मापकों को समझना महत्वपूर्ण है।

वनस्पति सूचकांक

वनस्पति सूचकांक एक प्रमुख और महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय पैरामीटर है जो पारिस्थितिकी और वन्यजीव अनुसंधान में उपयोगी है। यह विशेषकर वन्यजीवन और कृषि के क्षेत्र में वनस्पति के स्वास्थ्य और प्रदर्शन का मूल्यांकन करने के लिए प्रयुक्त होता है। अधिक वनस्पति सूचकांक संख्या वन्यजीवन और पौधों की अच्छी स्वास्थ्य स्थिति को दर्शाता है, जबकि कम वनस्पति सूचकांक संख्या वन्यजीवन की कमी या प्राकृतिक आवास क्षेत्रों के कमी को दर्शाता है। डेटा में वनस्पति सूचकांक का न्यूनतम और अधिकतम मान 2014 और 2022 में दिखाया गया है। 2014 में वनस्पति सूचकांक का न्यूनतम 0.199 और अधिकतम 0.732 था, जबकि 2022 में यह न्यूनतम 0.336 और अधिकतम 0.713 था। इससे स्पष्ट है कि इन दोनों सालों के बीच वनस्पति सूचकांक में वृद्धि हुई है, जिससे पौधों और वन्यजीवन की स्वास्थ्य और प्रदर्शन में सुधार हुआ। 2014 में, वनस्पति सूचकांक की न्यूनतम मान 0.199 था, जिससे प्राकृतिक आवास क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है, जो वन्यजीवन की कमी के साथ जुड़े होते हैं। जबकि अधिकतम मान 0.732 था, जो उच्च वन्यजीवन और पौधों की आच्छादित स्वास्थ्य को दर्शाता है। 2022 में, वनस्पति सूचकांक न्यूनतम मान 0.336 था, जो प्राकृतिक आवास क्षेत्रों की कमी को दर्शाता है, और अधिकतम मान 0.713 था, जो वन्यजीवन और पौधों की अधिक गहनता और प्रदर्शन को दर्शाता है। यह बदलाव इस पर्यावरणीय परिमाण की महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है और वन्यजीवन और पौधों की सुरक्षा और प्रबंधन में मदद करता है।

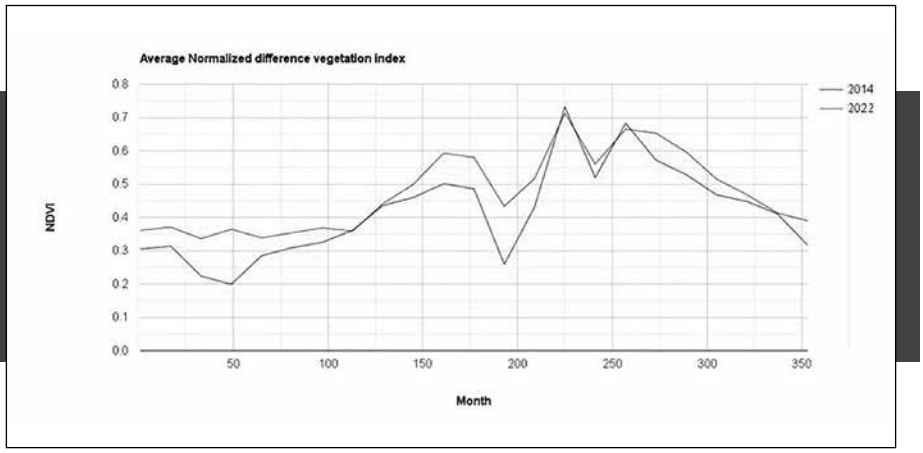

औसत वनस्पति सूचकांक (2014 तथा 2022)

निष्कर्ष

वनस्पति सूचकांक और भूमि सतह तापमान पर्यावरण के महत्वपूर्ण पैरामीटर हैं जो पारिस्थितिकी की गतिविधियों और पारिस्थितिकी की स्वास्थ्य को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 2014 से 2022 तक वनस्पति सूचकांक और भूमि सतह तापमान मानों की तुलना महत्वपूर्ण दर्शाती है कि इन सालों में वन्यजीवन और तापमान के पैटर्न में कैसे बदलाव हुए हैं। 2014 में, वनस्पति सूचकांक मान न्यूनतम 0.199 से लेकर अधिकतम 0.732 तक थे। ये मान दिन और रात के दौरान वन्यजीवन की घनता और स्वास्थ्य के विभिन्न स्तरों की संभावितता दर्शाते हैं। एक कम वनस्पति सूचकांक कम वन्यजीवन या तनावित वन्यजीवन को दर्शाता है, जबकि एक अधिक वनस्पति सूचकांक स्वस्थ और अधिक घने वन्यजीवन को सूचित करता है। वहीं, इस वर्ष भूमि सतह तापमान -43.97°C से लेकर 24.58°C के बीच थे। भूमि सतह तापमान मान अध्ययन क्षेत्र में तापमान की विविधता को दर्शाते हैं, जो दिन और रात दोनों के दौरान अत्यधिक थे। 2022 में, वनस्पति सूचकांक मान थोड़े से बढ़े, जो 0.336 से लेकर 0.713 तक थे। यह संभावित करता है कि 2014 के मुकाबले वन्यजीवन की स्वास्थ्य और घनता में सुधार हुआ है। इसके साथ ही, भूमि सतह तापमान मान भी बढ़े,

न्यूनतम -42.13°C से लेकर अधिकतम 27.00°C तक थे। इससे संदेह होता है कि वनस्पति सूचकांक और भूमि सतह तापमान दोनों के मानों में बढ़ोतरी वन्यजीवन की गतिविधियों और तापमान के पैटर्न में परिवर्तन को दर्शाते हैं, जो जलवायु परिवर्तन या भूमि उपयोग में परिवर्तन जैसे कारकों को प्रभावित कर सकते हैं। इन वर्षों के एन.डी.वी.आई. और भूमि सतह तापमान डेटा का विश्लेषण करना पर्यावरण प्रबंध, कृषि, नगर नियोजन और जलवायु परिवर्तन अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है।

हिमालय क्षेत्रः पर्यावरण और विकास की दिशा में चुनौतियाँ और अवसर

हेमचन्द्र जोशी
देव सिंह बिष्ट परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखंड

पृथ्वी पर हिमालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जो न केवल अपने अनूठे सौंदर्य और वनस्पति विविधता के लिए जाने जाते हैं, बल्कि उनका पर्यावरणीय महत्व भी अत्यधिक है। हिमालय क्षेत्र पूरे विश्व में अपनी विशेष पहचान रखता है, लेकिन यहाँ के पर्यावरणीय संकट और विकास की चुनौतियाँ भी अविरल हैं। इसके साथ ही, यह क्षेत्र मानव सभ्यता के विकास और पर्यावरणीय संरक्षण के बीच एक अद्वितीय संघर्ष के साक्षी भी है। इस लेख में, हम हिमालय क्षेत्र के पर्यावरणीय चुनौतियों और विकास के अवसरों पर विचार करेंगे।

पर्यावरणीय चुनौतियाँ

हिमालय क्षेत्र के पर्यावरणीय मुद्दों का समाधान आवश्यक है, क्योंकि ये न केवल स्थानीय जीवों और मानवों के लिए बल्कि पूरे ग्लोबल समुदाय के लिए भी महत्वपूर्ण हैं।

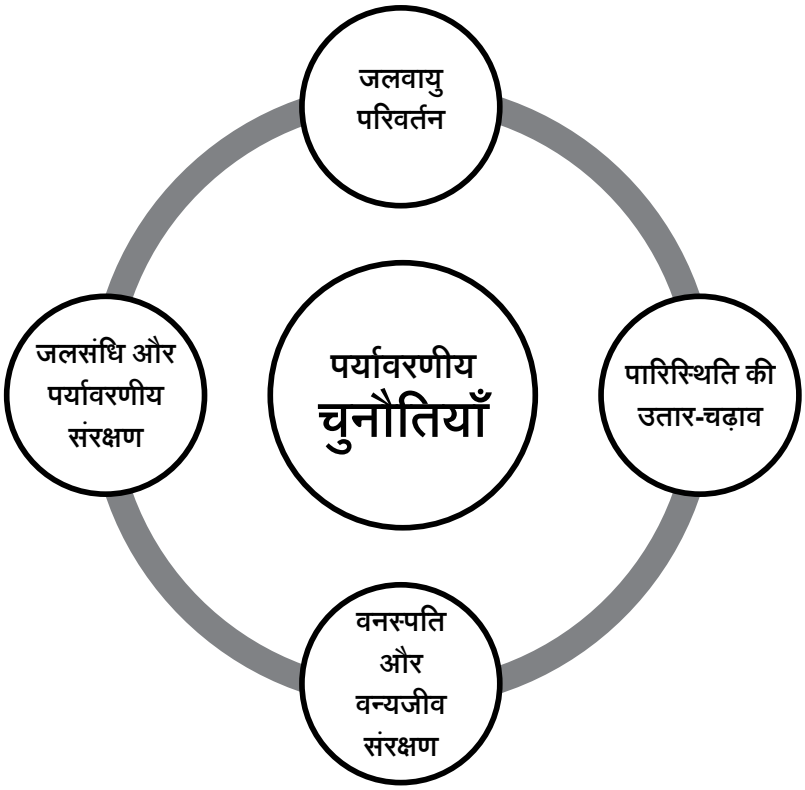

1. जलवायु परिवर्तन

हिमालय क्षेत्र जलवायु परिवर्तन के प्रति अत्यंत संवेदनशील है। बर्फीली चोटियों की गर्मियों में पिघलने की गति बढ़ रही है, जिससे बर्फ की मात्रा में कमी हो रही है। यह मानव जीवन और जीवों के लिए संकटपूर्ण है, क्योंकि यहाँ नदियों का पानी अधिकांशतः निर्भर होता है। जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न होने वाली बाढ़, सुखासन, और बारिश की अधिकतम मात्रा की समस्याएँ बच्चों, वृद्धों, और पर्यावरण को प्रभावित करती हैं।

2. पारिस्थिति की उतार-चढ़ाव

बर्फ के पिघलने और बारिश की अधिकतम मात्रा के परिणाम स्वरूप, उत्तराधिकारी नदियों के उतार-चढ़ाव में बदलाव आ रहा है। यह अनियमितता बाढ़ और भूकंप की तरह आपदाएँ उत्पन्न कर सकती है। पारिस्थिति की उतार-चढ़ाव के कारण नदियों की जीवों के लिए निर्णायक स्रोत बनने की समस्या हो सकती है, जिससे स्थानीय जनसंख्या की आर्थिक और सामाजिक स्थिति प्रभावित हो सकती है।

3. वनस्पति और वन्य जीव संरक्षण

हिमालय क्षेत्र की वनस्पति और वन्यजीव संरक्षित क्षेत्रों में कमी हो रही है, जिसका कारण जंगलों की कटाई और अन्य वातावरणीय परिवर्तन है। यह जीवों के लिए खतरे का कारण बन सकता है और पारिस्थिति की संतुलन को प्रभावित कर सकता है। वन्यजीवों की हरकतों के कारण उनके प्राकृतिक आवास कम हो रहे हैं, जिससे उनकी सुरक्षा और संरक्षण की चुनौती बढ़ गई है।

4. जल संधि और पर्यावरणीय संरक्षण

हिमालय क्षेत्र की जल संधि स्थिति भी चिंताजनक है। जल संधि के दृष्टिकोण से, यह नदियों के प्रवाह का नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण है, लेकिन बर्फ के पिघलने और बारिश की अधिकतम मात्रा के कारण जल संधि की समस्याएँ बढ़ गई हैं।

विकास की चुनौतियाँ

हिमालय क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक विकास के साथ--साथ उसके पर्यावरणीय संरक्षण के प्रति जिम्मेदारी भी बढ़ गई है। उसकी सांस्कृतिक

धरोहर और प्राकृतिक संसाधनों का सही तरीके से उपयोग कर के विकास करने की चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं।

1. **आर्थिक पिछड़ापन**: हिमालय क्षेत्र में आर्थिक पिछड़ापन एक मुख्य चुनौती है। यहाँ की जनसंख्या अधिकांशतः ग्रामीण है और उनकी मुख्य आर्थिक गतिविधियों में कृषि है, जो मौसम और भूमि की अनियमितताओं के कारण प्रभावित होती है। उच्च भूमि से आयोजित खेती की समस्या, वनों की कटाई, और पर्यावरणीय बदलाव इस क्षेत्र के आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं।

2. **इंफ्रास्ट्रक्चर विकास**: हिमालय क्षेत्र में इंफ्रास्ट्रक्चर का विकास आवश्यक है, लेकिन यह वातावरण के साथ सावधानी पूर्वक मिलाना चाहिए। सड़क निर्माण, बिजली आपूर्ति, और पर्यटन के विकास में सावधानी बरतनी चाहिए ताकि प्राकृतिक संसाधनों का नुकसान न हो। इंफ्रास्ट्रक्चर के विकास के साथ ही स्थानीय जनसंख्या की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है।

3. **सांस्कृतिक संरक्षण:** हिमालय क्षेत्र अपनी समृद्ध और विविध सांस्कृतिक धरोहर के लिए जाना जाता है। लेकिन तेजी से बदलते विकास के परिणामस्वरूप, यह संस्कृतिक मूल्यों को खोने की चुनौती से गुजर रहा है। जोखिम यह है कि सांस्कृतिक संरक्षण की अभी तक कोई सही दिशा निर्देशित नहीं है और उसे विकास के साथ मेल करने का तरीका खोजना होगा।

पर्यावरणीय संरक्षण और विकास के अवसर

हिमालय क्षेत्र के पर्यावरणीय संरक्षण और विकास के बीच एक संतुलन बनाने के लिए निम्नलिखित अवसर हैं:

1. **जीवों के संरक्षण को प्रोत्साहन**: हिमालय क्षेत्र का आदिवासी और स्थानीय जनसंख्या इसके प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का सबसे बड़ा साहसी योगदान कर रहे हैं। उन्हें स्थानीय जीवनशैली और जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक जागरूक होने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है, ताकि वे अपने पर्यावरण को संरक्षित रख सकें।

2. **बागवानी और कृषि के साथ-साथ पारंपरिक जल संवर्धन**: हिमालय क्षेत्र में पारंपरिक बागवानी तकनीकें और कृषि संवर्धन के लिए अवसर प्रदान कर सकती हैं। जल संचयन और सिंचाई की तकनीकों का प्रयोग करके खेती में वृद्धि की जा सकती है और साथ ही पारंपरिक बीज और पौधों की उपयोग करने से जलवायु परिवर्तन के प्रति सहायक उपाय दिखा सकते हैं।

3. **पर्यटन के साथ-साथ स्थानीय आयोजन**: हिमालय क्षेत्र का पर्यटन उसके आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण स्रोत हो सकता है, लेकिन इसे सावधानी पूर्वक विकसित करना होगा। सामाजिक और पार्यावरणिक प्रभावों को ध्यान में रखते हुए, सामुदायिक स्थलों का विकास किया जा सकता है, जो स्थानीय आयोजन और पर्यावरणीय संरक्षण को मिलकर समर्थन करेंगे।

4. **पर्यावरणीय शिक्षा और जागरूकता**: पर्यावरणीय शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से हिमालय क्षेत्र की जनसंख्या को जलवायु परिवर्तन, वनस्पति और वन्यजीव संरक्षण, और जल संधि के प्रति जागरूक कर सकते हैं। यह समस्याओं को समझने और समाधान करने की क्षमता को बढ़ा सकता है और उन्हें अपने पर्यावरण के साथ अधिक सामग्री संवाद स्थापित कर सकता है।

इन चुनौतियों का समाधान तभी संभव हो सकता है जब सरकारी और गैर-सरकारी संगठन, जन संगठन, और व्यक्तिगत स्तर पर सभी मिलकर काम करें। पर्यावरणीय संरक्षण के साथ-साथ समृद्धि के लिए सही दिशा में विकास करने की आवश्यकता है, ताकि हिमालय क्षेत्र के सभी जीवों के लिए सुरक्षित और सुखद भविष्य की संभावना बनी रहे।

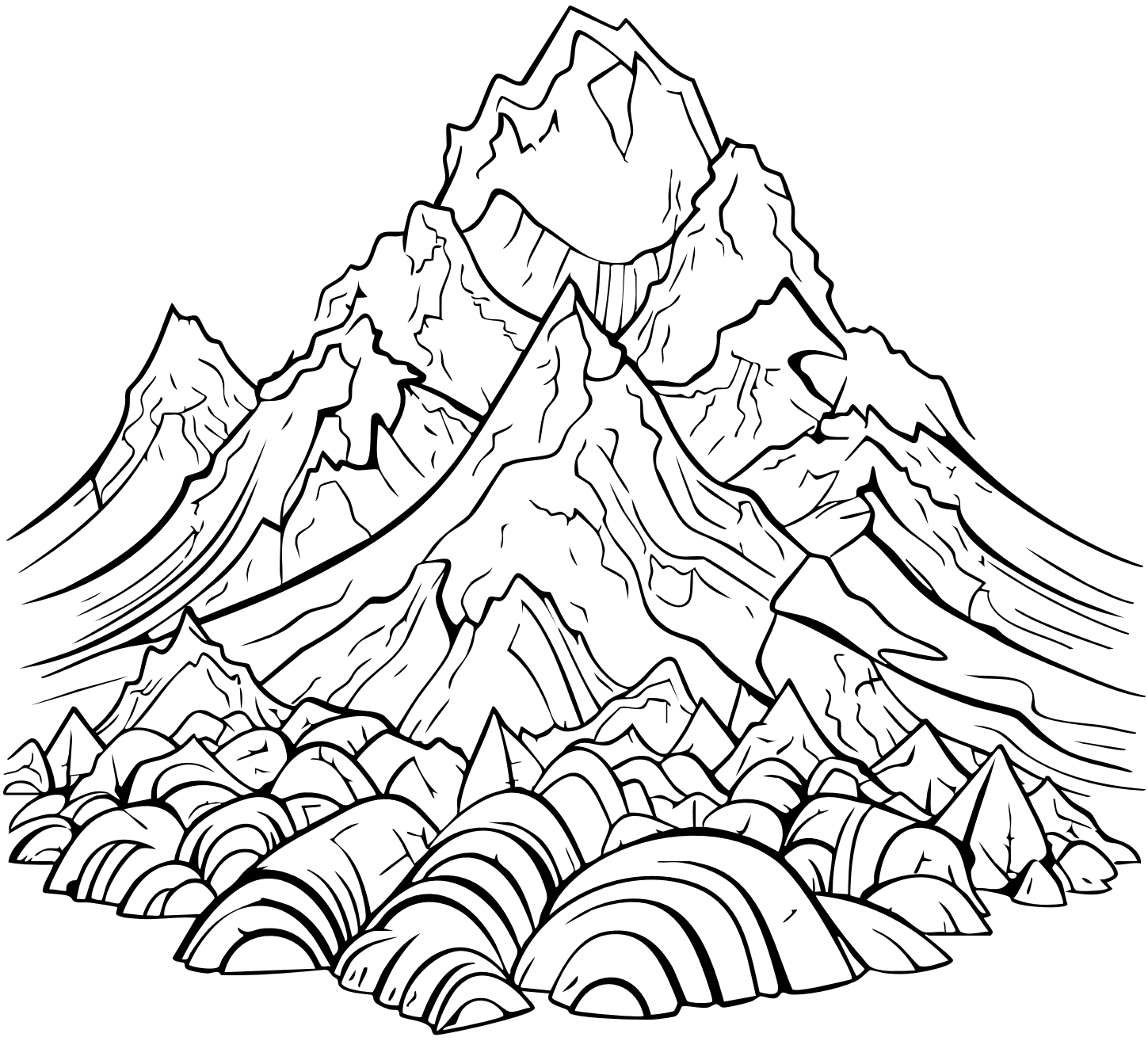

एकोनिटम हेटेरोफिलम (अतीस): एक लुप्तप्राय उच्च मूल्य हिमालयी औषधीय पादप

विनोद कुमार[1], किशोर कुमार[1], खिलेन्द्र सिंह कनवाल[2]

[1] गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, हिमाचल क्षेत्रीय केन्द्र, मौहल-कुल्लू (हि०प्र०)

[2] गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, कोसी-कटारमल, अल्मोडा उत्तराखंड

एकोनिटम हेटरोफिलम (Aconitum heterophyllum) जिसे आमतौर पर आयुर्वेदिक चिकित्सा में ''अतिविशा'' तथा हिमाचल प्रदेश में ''अतीस'' के रूप में जाना जाता है। यह एक द्विवर्षीय पौधा है तथा इसकी कुछ प्रजातियां बारह मासी भी है जो कि अपने शक्तिशाली औषधीय गुणों के लिए विख्यात है। *एकोनिटम हेटरोफिलम* सामान्यतया अल्पाइन और उप-अल्पाइन हिमालय में जंगली रूप में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में मुख्य रूप से *एकोनिटम वायलेसियम, एकोनिटम रोटुंडिफोलियम, एकोनिटम डाइनोरिज़म, एकोनिटम चस्मान्थम,एकोनिटम हेटरोफिलम* प्रजातियां पाई जाती हैं। *एकोनिटम हेटरोफिलम* को IUCN की रेड डेटा बुक में हिमालय की लुप्तप्राय प्रजातियों में सूचीबद्ध किया गया है। *एकोनिटम हेटेरोफिलम* का वैज्ञानिक वर्गीकरण तथा इसमें मौजूद पादप रसायन संरचनाएं इस प्रकार हैं-

***एकोनिटम हेटेरोफिलम* का वैज्ञानिक वर्गीकरण**	
वानस्पतिक नाम	*एकोनिटम हेटरोफिलम*
परिवार	रानुनकुलेसी
किंगडम	प्लांटे
प्रभाग	मैग्नोलियोफाइटा
क्लास	मैगनोलियोप्सिडा
ऑर्डर	रानुनकुलेल्स
जीनस	एकोनिटम
प्रजाति	हेटरोफिलम

***एकोनिटम हेटेरोफिलम* में मौजूद पादप रसायन संरचनाएं**
रासायनिक घटक
12-सेकोहेटिसन-2-ओल
एन-स्यूसिनिल एन्थ्रानिलेट
एटेसिनॉल 6-बेंज़ॉयलहेटेरस्टाइन
एन-डायथाइल-एन-फॉर्माइलैकोनिटाइन
मिथाइल एकोनिटाइन
बच्छनाग का विष (एकोनिटाइन)
एंथोरिन

(**स्त्रोतः** परमानिक, डी., एट अल (2017)

इस जड़ी बूटी का उपयोग आयुर्वेद में किया जाता है और प्राथमिक औषधीय भाग इसकी जड़ है, जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार की बीमारियों के इलाज के लिए किया जाता है।

लाहौल घाटी, हिमाचल प्रदेश में अतीस की व्यावसायिक खेती

यह अपने वायुनाशक और पाचन उत्तेजक गुणों के कारण पाचन विकारों, जैसे अपच और दस्त के प्रबंधन में विशेष रूपसे प्रभावी है।

अतीस श्वसन स्वास्थ्य में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा कफ निस्सारक और सूजन-रोधी प्रभावों के माध्यम से अस्थमा, ब्रोंकाइटिस और पुरानी खांसी से भी राहत देती है। अतीस को इसके ज्वरनाशक और रोगाणुरोधी गुणों के लिए महत्व दिया जाता है, जो इसे बुखार और संक्रमण के लिए एक उपयोगी उपाय बनाता है। इसके महत्वपूर्ण एंटी-इंफ्लेमेटरी और एनाल्जेसिक गुण प्रो-इंफ्लेमेटरी मार्गों को रोककर गठिया और गाउट जैसी स्थितियों के इलाज में फायदेमंद हैं। यह इम्युनोग्लोबुलिन और साइटोकिन्स के उत्पादन को उत्तेजित करता है, जिससे संक्रमण के खिलाफ शरीर की रक्षा तंत्र मजबूत होता है। अतीस का औषधीय महत्व

मुख्य रूप से इसके विविध रासायनिक घटकों के कारण है, जिसमें एटिसिन, हेटेराटिसिन और हेटरोफिलिन जैसे डाइटरपेनॉइड एल्कलॉइड शामिल हैं। ये यौगिक औषधीय गतिविधियों की एक श्रृंखला प्रदर्शित करते हैं, जो पौधे के चिकित्सीय प्रभावों के लिए आवश्यक हैं।

अतीस के औषधीय गुण

अतीस न केवल अपने औषधीय गुणों के लिए बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र में अपनी भूमिका के लिए भी महत्वपूर्ण है। अतीस की उपस्थिति हिमालय क्षेत्र की जैव विविधता में योगदान करती है। यह एक अद्वितीय पारिस्थितिक क्षेत्र का हिस्सा है, जो विभिन्न प्रकार के अन्य पौधों और जानवरों की प्रजातियों का समर्थन करता है। इस पौधे की रक्षा करने से समग्र पारिस्थितिक संतुलन और इसके प्राकृतिक आवास की जैव विविधता को संरक्षित करने में मदद मिलती है।एक फूल वाले पौधे के रूप में, अतीस परागण में भूमिका निभाता है और मधुमक्खियों व तितलियों जैसी परागण प्रजातियों के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करता है। इसकी उपस्थिति मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने, कटाव को रोकने और पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर पोषक तत्वों के चक्र को बढ़ावा देने में मदद करती है।

अत्यधिक औषधीय गुण होने की वजह से, अतीस को कई संरक्षण चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। अत्यधिक कटाई, आवास विनाश और जलवायु परिवर्तन इसके अस्तित्व के लिए बड़े खतरे हैं। पौधे की धीमी वृद्धि दर और विशिष्ट आवास आवश्यकताएं इसे इन खतरों के प्रति संवेदनशील बनाती हैं। पारंपरिक चिकित्सा में अतीस की उच्च मांग के कारण इसकी जंगली आबादी की अत्यधिक कटाई हुई है। कृषि विस्तार, बुनियादी ढांचे के विकास और पर्यटन गतिविधियों द्वारा अतीस के प्राकृतिक आवासों पर तेजी से अतिक्रमण किया जा रहा है। जलवायु परिवर्तन अतीस के अस्तित्व के लिए एक महत्वपूर्ण खतरा है। तापमान और वर्षा के पैटर्न में बदलाव से पौधे के आवास में बदलाव आ सकता है, जिससे इसकी वृद्धि और प्रजनन प्रभावित हो सकता है। सूखे और भारी बर्फबारी जैसी चरम मौसम की घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति भी पौधे के अस्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है। संरक्षण नीतियों और सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से इन आवासों की रक्षा करना महत्वपूर्ण है। अतीस का संरक्षण न केवल जैव विविधता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है, बल्कि इस जड़ी बूटी पर निर्भर पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों को बनाए रखने के लिए भी आवश्यक है। एक्स-सीटू संरक्षण (बीज बैंक, वनस्पति उद्यान में खेती, टिशू कल्चर) और इन-सीटू संरक्षण (प्राकृतिक आवासों की रक्षा, सतत् कटाई को बढ़ावा देना), भविष्य की पीढ़ियों के लिए पौधे की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। संरक्षण प्रथाओं में स्थानीय समुदायों को शामिल करना और पौधे के पारिस्थितिक और औषधीय महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाना स्थायी उपयोग और आवास संरक्षण को बढ़ावा दे सकता है। अतीस के संरक्षण को प्राथमिकता देकर, हम इसकी आनुवंशिक विविधता और निरंतर उपलब्धता की रक्षा कर सकते हैं, जिससे इसमें रहने वाले पारिस्थितिक तंत्र और इस पर निर्भर समुदायों के समग्र स्वास्थ्य में योगदान हो सकता है।

अतीस की औषधीय मांग को पूरा करने और सतत् उपयोग सुनिश्चित करने के लिए इस पौधे की वैज्ञानिक खेती, कटाई और प्रसंस्करण आवश्यक है। उचित तकनीक और प्रथाएं इसकी जंगली आबादी को संरक्षित करते हुए इसके चिकित्सीय गुणों को बनाए रखने में मदद कर सकती हैं। अतीस की खेती के लिए ठंडी, समशीतोष्ण जलवायु और समुद्र तल से 2,500 से 4,500 मीटर के बीच की ऊंचाई की आवश्यकता होती है। हिमालय के अल्पाइन और उप-अल्पाइन क्षेत्रों तथा हिमाचल प्रदेश में लाहौल स्पिीति, कुल्लू, चम्बा, किन्नौर के उंचाई वाले क्षेत्र इसकी खेती के लिए अनुकूल हैं।

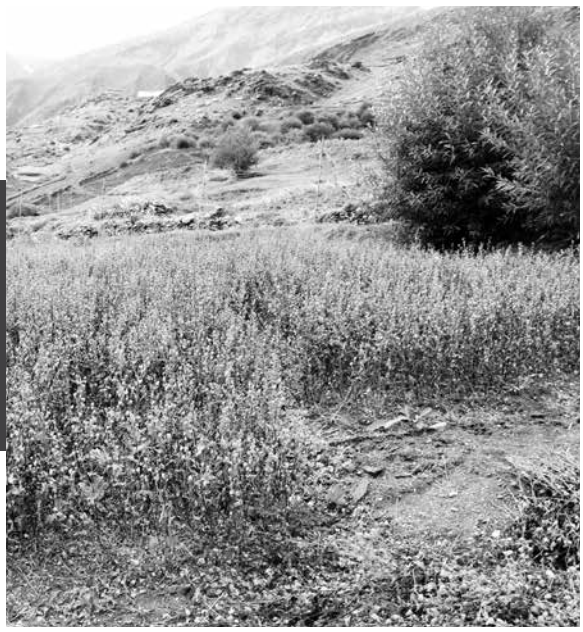

कुल्लू में अतीस की खेती

अतीस के संरक्षण तथा मूल्य श्रृंखला को बढ़ावा देने के लिए गोविन्द बल्लभ पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, हिमाचल क्षेत्रीय केन्द्र द्वारा हिमाचल प्रदेश के कुल्लू तथा लाहौल स्पीती जिले में अतीस की खेती की जा रही है। कुल्लू जिले की पार्वती घाटी तथा तीर्थन घाटी के 55 किसानो द्वारा 150 एकड़ जमीन में अतीस के साथ साथ कुठ, चोरा, पुष्कर मूल आदि औषधीय पौधो की खेती की जा रही है। लाहौल स्पीति के खंगसर, नालदा , खोकसर केलांग में अतीस, कुठ, चोरा, पुष्कर मूल की खेती की जा रही है। लाहौल स्पीती में अतीस की जड़ की कीमत 5,500 रूपये प्रति किलो ग्राम है तथा बीज 8,000 रूपये प्रति किलो ग्राम है। ई-चरक के अनुसार वर्तमान में अतीस की जड़ों का मूल्य 6,928/- रूपये प्रति किलोग्राम हैं। इस पौधे का विकास कार्बनिक पदार्थों से भरपूर नम, अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी में होता है। अतीस का पौधा बीज या जड़ कंदों (Rhizome) के माध्यम से तैयार किया जा सकता है। बीजों को सुप्तावस्था (Dormancy) तोड़ने के लिए ठंडे स्तरीकरण की आवश्यकता होती है, जबकि कंद अधिक विश्वसनीय प्रसार विधि प्रदान करते हैं। अतीस रोपण आमतौर पर वसंत या गर्मियों की शुरुआत में किया जाता है। अतीस के पौधे को नियमित रूप से पानी देना आवश्यक है, विशेष रूप से सूखे के दौरान, लेकिन जड़ सड़न को रोकने के लिए अधिक पानी देने से बचना चाहिए। जैविक उर्वरक पौधों की वृद्धि में सहायता करते हैं, और मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए प्राकृतिक कीट नियंत्रण विधियों को प्राथमिकता देनी चाहिए। अतीस की फसल 2 से 3 वर्ष में तैयार होती है। जड़ों की कटाई आमतौर पर देर से गर्मियों या शुरुआती शरद ऋतु में की जाती है जब इसमें बायोएक्टिव यौगिक संचय उच्च स्तर पर होता है। बहुत जल्दी या देर से कटाई करने से जड़ों की प्रभावशीलता कम हो सकती है। स्थायी कटाई प्रथाओं में प्राकृतिक पुनर्जनन के लिएजमीन में कुछ जड़ें छोड़ना शामिल है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि पौधों की आबादी बनी रहे। जड़ों की गुणवत्ता और शक्ति को बनाए रखने के लिए उचित प्रबंधन महत्वपूर्ण है।

कटाई के बाद साफ की गई जड़ों को छाया में या अच्छी तरह हवादार सुखाने वाले शेड में सूखने के लिए पतली परतों में फैलाया जाता है और सीधे धूप से बचाया जाता है जो बायोएक्टिव यौगिकों को ख़राब कर सकता है। जलवायु परिस्थितियों के आधार पर सुखाने की प्रक्रिया में कई दिनों से लेकर हफ्तों तक का समय लग सकता है। अच्छी तरह सुखाने से फफूंदी की वृद्धि रुक जाती है और औषधीय गुण सुरक्षित रहते हैं। एक बार सूखने के बाद, जड़ों को छोटे टुकड़ों में काट दिया जाता है और यांत्रिक ग्राइंडर का उपयोग करके बारीक पाउडर बना दिया जाता है। प्रसंस्कृत जड़ों का उपयोग विभिन्न औषोधियों में किया जाता है, जिन्हें अक्सर चिकित्सीय प्रभाव बढ़ाने के लिए अन्य जड़ी-बूटियों के साथ मिलायाजाता है, और काढ़े, पाउडर, गोलियों या अर्क के रूप में तैयार किया जाता है। अतीस उत्पादों की प्रभावकारिता और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए गुणवत्ता नियंत्रण उपाय महत्वपूर्ण हैं।

अतीस के उत्पाद

निष्कर्ष

अतीस एक बहुउपयोगी पौधा है जो औषधीय गुणों के साथ साथ परिस्थितकी को कायम रखने में सक्षम है। इसकी खेती के दौरान कृत्रिम उर्वरको का उपयोग नहीं करना चाहिए तथा इसकी कटाई भी उचित समय पर करनी चाहिए ताकि इसके औषधीय गुण कायम रहे और बाज़ार में इसका उचित मूल्य मिल सके। भारतीय हिमालयी अल्पाइन क्षेत्रों में पायी जाने वाली विभिन्न दुर्लभ जड़ी बूटियों के पुष्पित होने के समय देशी मधुमक्खियों के बोक्सों को रखकर क्षेत्र विशेष में पायी जाने वाली विभिन्न दुर्लभ जड़ी बूटियों में परागण क्रिया के साथ साथ बीज निर्माण की प्रक्रिया भी सुनिश्चित होगी जो कि लुप्तप्राय जड़ी बूटियों के संरक्षण में एक महत्वपूर्ण आयाम होगा इसके अलावा हिमालयी जड़ी बूटियों के पुष्पों से एकल पुष्पीय शहद उत्पादन भी सुनिश्चित होगा। जिसके औषधीय गुणों की वजह से बाज़ार में इसकी अत्यधिक मांग है और एकल पुष्पीय शहद का मूल्य भी सामन्य बहुपुष्पीय शहद की तुलना में कई गुना अधिक है। इस प्रकार से जड़ी बूटी उत्पादन के साथ-साथ ग्रामीण नवयुवकों को आजीविका में अतिरिक्त वृद्धि होती है।

सन्दर्भ

परमानिक, डी., पांडे, आर., शुक्ला, एस.एस., और शर्मा, वी. (2017)। औषधीय पौधे "एकोनिटम हेटेरोफिलम" (अरुणा) पर प्राथमिक औषधीय और अन्य महत्वपूर्ण परिणाम। जर्नल ऑफ फार्माकोपंक्चर, 20(2), 89।

लद्दाख के ऊंचाई पर स्थित एक गांव में कृत्रिम बर्फ जलाशय के माध्यम से पानी की मांग और आपूर्ति का संतुलन

पुरुषोत्तम कुमार गर्ग[1], अजय कुमार गुप्ता[1] और संदीपन मुखर्जी[1], विनोद कोठारी[2] और निखलेश पंत[2]
[1] गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालय पर्यावरण संस्थान, लदाख क्षेत्रीय केंद्र, लेह, लदाख
[2] हिमोत्थान सोसाइटी, देहरादून, उत्तराखंड

लद्दाख एक उच्च-भूस्थित शीत मरुस्थल है। लगभग 100 मिमी औसत वार्षिक वर्षा वाले इस क्षेत्र का जल विज्ञान आश्चर्यजनक माना जा सकता है। इस क्षेत्र में जल आपूर्ति का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हिम क्षेत्रों, हिमनदों और पर्माफ्रॉस्ट के पिघलने से मिलने वाला पानी है। लद्दाख क्षेत्र में भूमि उपयोग हमेशा मौसमी जल की कमी के प्रति संवेदनशील रहा है, जिससे सिंचाई और घरेलू जल आपूर्ति प्रभावित होती है। ऊँचे स्थानों पर कम तापमान और मौसमी हिमपात में परिवर्तनशीलता के कारण अक्सर कृषि मौसम की शुरुआत में लगभग दो महीने तक पानी की कमी हो जाती है, जब तक कि उच्च ऊंचाई पर स्थित हिमनद पर्याप्त और विश्वसनीय जल आपूर्ति प्रदान करने के लिए पिघलना शुरू नहीं हो जाते। वर्तमान जलवायु परिवर्तन की चुनौतियाँ और मौसमी मानदंडों से वर्षा घटनाओं के विच्छेदन ने भी जल उपलब्धता पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। कृत्रिम हिमालय जल भंडार, जिन्हें आम तौर पर कृत्रिम ग्लेशियर के नाम से जाना जाता है, प्राकृतिक ग्लेशियरों की तुलना में बहुत कम ऊंचाई पर स्थित होते हैं, और फसल ऋतुओं की शुरुआत में पिघलना शुरू हो कर जल की आपूर्ति सुनिश्चित करते हैं। कई कृत्रिम ग्लेशियर प्रायः निचले गांवों में साल भर जल आपूर्ति को बनाए रखते हैं। निर्माण प्रक्रिया, आकार और ढांचे के आधार पर, इन जलाशयों को 'कृत्रिम ग्लेशियर', 'आइस स्तूप' और 'हिम अवरोध बैंड' के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। इस तरह के हिम जलाशय स्थानीय परिस्थितियों में बार-बार जमने और पिघलने के चक्रों की जल विज्ञान प्रक्रिया का उपयोग करके पानी को जमा करते हैं। सामान्यतः, कृत्रिम हिमालय जल भंडारों का निर्माण के लिए, पत्थरों की दीवारें बनाई जाती हैं जिसमें पानी को बंद किया जाता है, जो सर्दियों में जम जाता है और फिर बसंत में पिघल जाता है।

लद्दाख के जाने-माने इंजीनियर चेवांग नोर्फेल द्वारा कृत्रिम ग्लेशियर तकनीकों को सर्वप्रथम 1987 में लद्दाख के फोकसे गांव में प्रायोगिक रूप से कार्यान्वित किया गया था। आरंभिक सफलता के बाद यह तकनीक जल्द ही अन्य स्थानों पर भी प्रचलित हुई। कृत्रिम हिम जलाशयों के जल आपूर्ति को बनाए रखने के लिए कितना महत्वपूर्ण है, इसके बारे में बहुत कुछ दर्ज हो चुका है, लेकिन इन दावों को समर्थन करने के लिए बहुत ही कम वैज्ञानिक साक्ष्य मौजूद हैं। गैर-सरकारी संगठन और कृत्रिम ग्लेशियरों के विकास की देखरेख करने वाले इंजीनियर साधारण ग्रामीण वातावरण में काम करते हैं, जिनके पास ग्लेशियरों के प्रदर्शन का गहन विश्लेषण करने के लिए प्रौद्योगिकी, संसाधन और समय का काफी अभाव होता है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान अध्ययन का लक्ष्य लद्दाख के तरचित गांव में हिम्मोथान, जो कि टाटा ट्रस्ट द्वारा स्थापित एक गैर-सरकारी संगठन है, द्वारा 2023 और 2024 की सर्दियों के दौरान निर्मित कृत्रिम बर्फ अवरोध बैंडों (सामान्य शब्दों में 'हिम भंडार') का मूल्यांकन करना है। तरचित गांव

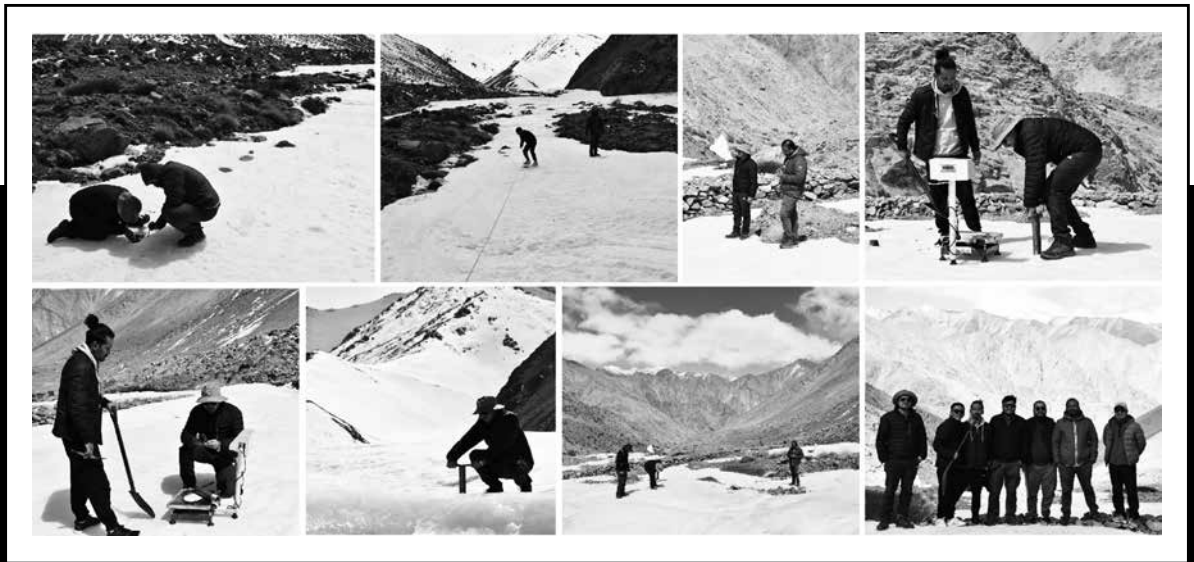

चित्र 1. तरचित, लद्दाख में कृत्रिम हिमालय जल भंडार के आकार और आयतन के आकलन को दर्शाने वाले क्षेत्र-चित्र।

(33.7°N, 77.94°E) समुद्र तल से लगभग 3950 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है और सामान्यतः जल की कमी वाला क्षेत्र है। हिम भंडारों का स्थल पर मूल्यांकन अप्रैल 2024 के दौरान किया गया था। इसमें उच्च-स्तरीय हथधर्य ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (गरमिन 66S), संपर्क रहित लेजर माप उपकरण और हिम भंडार के आकार और आयतन की मात्रा निर्धारित करने के लिए अनुकूलित घनत्व मापन किट का उपयोग किया गया था (चित्र 1)। विस्तृत मूल्यांकन के मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं:

- जलाशय का क्षेत्रफल 39,994 वर्ग मीटर होने की गणना की गई। चेक बैंडों की 3 फीट की ऊंचाई और हिम के आदर्श घनत्व कारक 0.5 को ध्यान में रखते हुए, जलाशय की अधिकतम क्षमता 18.29 मिलियन लीटर जल के बराबर आंकी गयी।

- स्थल पर मापों से पता चलता है कि वास्तविक हिम से ढका क्षेत्रफल 31,995 वर्ग मीटर है और इसकी औसत गहराई 2.4 फीट है। संचित हिम का मापा गया घनत्व कारक 0.48 है। इस प्रकार, वास्तविक भंडारण का अनुमान 11.23 मिलियन लीटर जल के बराबर है, जो कुल क्षमता का लगभग 61: है।

चित्र 2. लद्दाख के तरचित गांव में जल मांग सर्वेक्षण दर्शाते क्षेत्र-चित्र।

इसके बाद, घरेलू जल मांग आकलन के लिए एक समर्पित प्रश्नावली विकसित की गई, जिसमें कुल परिवारों की संख्या, परिवार के सदस्यों की संख्या, कुल कृषि भूमि, कुल कृषि योग्य भूमि, कुल सिंचित भूमि, पशुओं की संख्या, पीने और घरेलू कार्यों के लिए दैनिक जल खपत, पशुओं के लिए दैनिक जल आवश्यकता से संबंधित प्रश्न शामिल थे। विकसित प्रश्नावली का प्रारंभ में परीक्षण किया गया और उसके बाद, अप्रैल 2024 में तरचित गांव में जल मांग का आकलन करने के लिए एक घरेलू सर्वेक्षण के लिए उपयोग में लाया गया (चित्र 2)।

गांव में कुल 32 परिवार हैं जिनमें 167 व्यक्ति रहते हैं। जल मांग का आकलन करने के लिए कुल 12 परिवारों का सर्वेक्षण किया गया। परिणामों से पता चलता है कि वर्तमान में ग्रामीण पेयजल और घरेलू उपयोग सहित प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 26 लीटर पानी का उपयोग कर रहे हैं। यह प्रति वर्ष लगभग 1.58 मिलियन लीटर पानी के बराबर होता है। पशुधन के संदर्भ में गांव के प्रत्येक परिवार में 3.9 वयस्क पशु इकाई या एडल्ट कैटल यूनिट (ACU) हैं और यह माना गया है कि एक ACU एक गाय के बराबर होता है जिसकी दैनिक जल आवश्यकता लगभग 70 लीटर होती है। आगे, यह गणना की गई कि गांव में पशुधन के लिए जल की मांग लगभग 3.21 मिलियन लीटर प्रति वर्ष है। कृषि जल मांग के संदर्भ में, गांव में 30 हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि और सिंचित भूमि है और ग्रामीण पूरे वर्ष केवल एक फसल (जौ) उगाते हैं। जौ के लिए प्रति हेक्टेयर औसत जल की मांग लगभग 2.7 मिलियन लीटर है। इस प्रकार, गांव में कृषि के लिए कुल सिंचाई जल की मांग लगभग 86.72 मिलियन लीटर है।

मांग और आपूर्ति की तुलना करते हुए, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हिम भंडार घरेलू और पशुधन की जल जरूरतों को पर्याप्त रूप से पूरा करने में सक्षम है। हालांकि, कुल उपलब्ध जल मात्रा कृषि की मांग के लिए पर्याप्त नहीं लगती है। फिर भी, अन्य समवर्ती हस्तक्षेप जैसे कि हिमालयन इंस्टीट्यूट ऑफ अल्टरनेटिव्स लद्दाख द्वारा बनाया गया आइस स्तूप, जो की गांव के समीप स्थित है, झरने के पानी के साथ मिलकर कृषि गतिविधियों द्वारा जनित जल मांग को पूरा कर सकते हैं। जल मांग को काम करने के लिए ड्रिप सिंचाई और संरक्षित पलवार के साथ साथ कम पानी - लागत वाली फसलों का अपनाना मददगार साबित हो सकता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है, जलवायु परिवर्तन एक बड़ी समस्या है, लेकिन हिम भंडार जैसी जलवायु के अनुकूल उपक्रम पानी की कमी को दूर करने में काफी मददगार साबित हो रहे हैं। हिम भंडार, आवश्यकता और प्रयोगशीलता का परिणाम हैं, और बड़े संरचनात्मक परियोजनाओं की तुलना में लागत-कुशल और सुरक्षित होते हैं। इनके विफल होने की सम्भावनाये बहुत कम होती हैं। इस प्रकार के जलाशयों का सुनियोजित आकलन, जैसा कि वर्तमान अध्ययन में किया गया है, इनको और बेहतर बनाने और इनकी अधिकतम क्षमता का इस्तेमाल करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

भारतीय हिमालयी क्षेत्र में जल सरंक्षण में स्थानीय उपाय और परंपरागत ज्ञान का महत्व

साक्षी ठाकुर, राकेश कुमार सिंह, रेनू लता
गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, हिमाचल क्षेत्रीय केंद्र, मोहल कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

परिचय

भारतीय हिमालय क्षेत्र,एक अद्वितीय जैवविविधता वाला क्षेत्र है जो वैश्विक पर्यावरण संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह क्षेत्र विभिन्न पारिस्थितिकी प्रणालियों का घर है और यहाँ के निवासी सदियों से परंपरागत ज्ञान और स्थानीय उपायों का उपयोग करके अपने प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कर रहे हैं। भारतीय हिमालय के निवासियों का परंपरागत ज्ञान उनकी सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न हिस्सा है। यह लोग अपने पर्यावरण को गहराई से समझते हैं और उसके साथ संतुलन बनाए रखते हैं। हिमाचल प्रदेश न केवल बर्फ से ढके पहाड़ों का घर है बल्कि यह क्षेत्र अनेकों नदियों, झीलों और झरनों से भी समृद्ध है। हिमाचल मे मुख्य नदियाँ सतलुज, ब्यास, रावी, चिनाब और यमुना हैं। यहाँ की पारंपरिक ज्ञान प्रणाली और स्थानीय उपाय जल सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के तौर पर, जल संरक्षण के लिए “बावड़ी” और “कुल्ह” जैसे परंपरागत जल स्रोतों का उपयोग किया जाता है। यह जल स्रोत ग्रामीणों की दैनिक जरूरतों को पूरा करता है और जल संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

हिमाचल प्रदेश की प्रमुख नदियाँ

हिमाचल प्रदेश दोनों सिंधु और गंगा नदी की घाटियों के लिए पानी का एक स्रोत है, जिनमें मुख्य नदियाँ सतलुज, ब्यास, रावी, चिनाब और यमुना हैं। सतलुज तिब्बत से, ब्यास पीर पंजाल पर्वतमाला से, रावी बड़ा भंगाल से, चिनाब चंद्रा और भागा के संगम से और यमुना यमनोत्री से निकलती है। यह नदियाँ न केवल राज्य के भीतर कृषि, पेयजल और जलविद्युत उत्पादन के लिए, महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे नीचे स्थित पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों को भी जल आपूर्ति करती हैं। इन नदियों के जलग्रहण क्षेत्र सदाबहार वन, हिमाच्छादित पर्वत और घास के मैदानों से भरपूर हैं, जो प्राकृतिक रूप से जल संचित करते हैं और नदियों को सालभर प्रवाहित रखते हैं। इसके अलावा, इन नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में कई धार्मिक और पर्यटन स्थलों का विकास हुआ है, जो राज्य की अर्थव्यवस्था में योगदान करते हैं।

हिमाचल की परम्परागत जल संरचनाएं

हिमाचल प्रदेश में पारंपरिक जल संरक्षण उपाय विविध और विशिष्ट हैं। इनमें से कुछ प्रमुख उपाय इस प्रकार हैं:

घराट:
घराट, पारंपरिक जल संरक्षण की एक विधि है, जिसमें पानी के बहाव का उपयोग करके पिसाई और अन्य कार्य किए जाते हैं। यह पहाड़ी क्षेत्रों में जल संसाधन का कुशल उपयोग सुनिश्चित करता है और ऊर्जा की बचत करता है। घराट स्थानीय समुदायों में आज भी टिकाऊ विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

बावड़ी:
हिमाचल प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में बावड़ी और नाऊल जैसी पारंपरिक जल संरचनाएँ बनाई जाती हैं, जो वर्षाजल को संग्रहित करती हैं और उसे भूमिगत जल के रूप में सुरक्षित रखती है

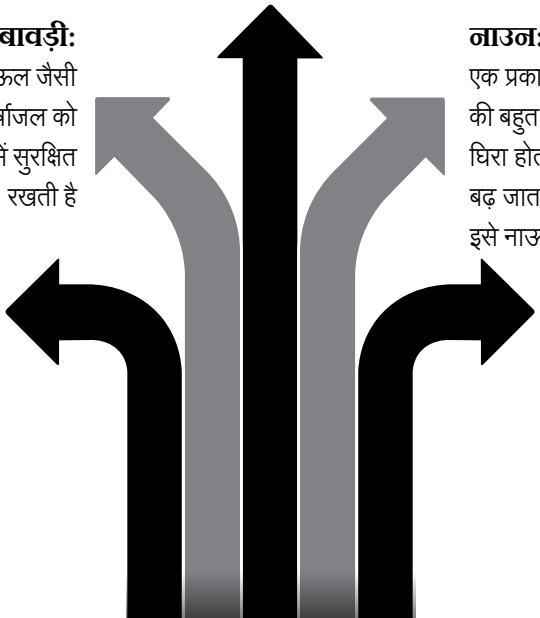

नाउन:
एक प्रकार की जल भंडारण संरचना है जिसमें पानी जमा करने की बहुत बड़ी क्षमता होती है। जब भूजल स्रोत एक छोटे टैंक से घिरा होता है तो यह एक बावड़ी बन जाता है और जब आकार बढ़ जाता है और उपयोग कई उद्देश्यों के लिए बढ़ जाता है तो इसे नाऊन कहा जाता है।

कुल्ह (कुल):
हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में पारंपरिक जल निकासी प्रणाली, जिसे कुल्ह या कुल कहा जाता है, महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह प्रणाली प्राकृतिक ढलान का उपयोग करके पानी को खेतों तक पहुंचाती है, जिससे सिंचाई की समस्या हल होती है।

छरेदू:
छरेदू एक प्रकार का पारंपरिक जल संसाधन है जहां पाइप की मदद से पानी को सीधे भूजल स्रोत से प्रवाहित किया जाता है।

हिमालयी क्षेत्र में जल सुरक्षा की चुनौतियाँ

हिमालयी क्षेत्र में जल सुरक्षा की चुनौतियाँ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अत्यंत जटिल और बहुआयामी हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण ग्लेशियरों का तेजी से पिघलना प्रमुख चिंता का विषय है, जिससे नदियों में जल प्रवाह की अनिश्चितता बढ़ रही है। प्रारंभ में पिघलते ग्लेशियर नदियों में जल प्रवाह बढ़ाते हैं, लेकिन दीर्घकालिक प्रभाव के रूप में जल स्रोतों में कमी आती है, जिससे लाखों लोगों की जल आपूर्ति खतरे में पड़ जाती है। इसके साथ ही, अनियमित वर्षा पैटर्न, जिसमें अत्यधिक वर्षा और लंबे सूखे शामिल हैं, जल सुरक्षा को और जटिल बनाते हैं। अत्यधिक वर्षा से बाढ़ और भूस्खलन होते हैं, जो जल स्रोतों को दूषित कर सकते हैं, जबकि सूखे के दौरान जल की उपलब्धता कम हो जाती है। जनसंख्या वृद्धि और अनियंत्रित शहरीकरण से जल संसाधनों पर अत्यधिक दबाव पड़ता है, जिससे जल की गुणवत्ता और मात्रा दोनों प्रभावित होती हैं। औद्योगिक अपशिष्ट और घरेलू कचरे के सीधे निस्तारण से जल प्रदूषण बढ़ता है, जिससे स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसके अलावा, जल संसाधनों के सतत प्रबंधन के लिए एकीकृत और समग्र नीतियों की कमी भी जल सुरक्षा के लिए चुनौतीपूर्ण है। इन सभी कारकों से निपटने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान, परंपरागत ज्ञान, और आधुनिक तकनीकों का समन्वित उपयोग आवश्यक है ताकि जल सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके और हिमालयी क्षेत्र की पारिस्थितिकी संतुलित रह सके।

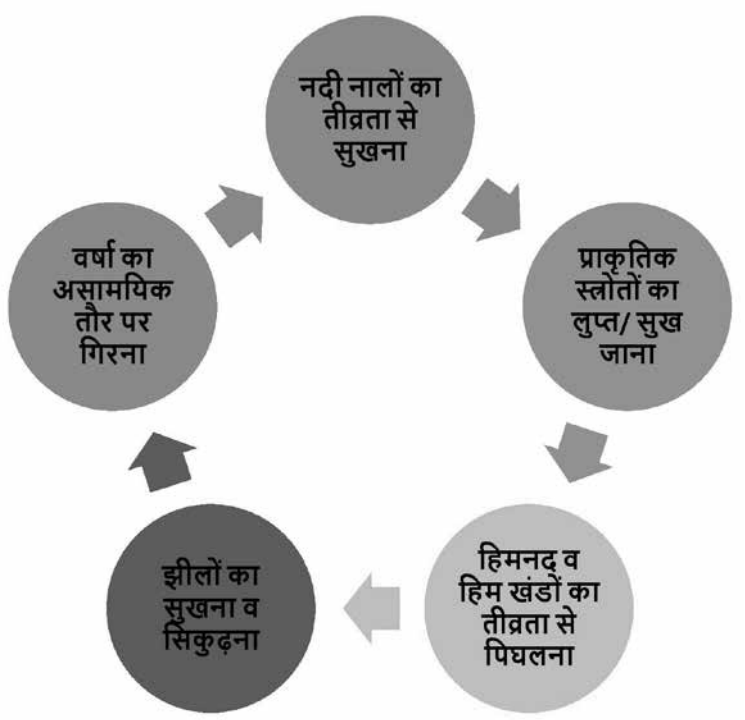

आकृति 4. जलवायु परिवर्तन का जल संसाधनो पर प्रभाव

पारंपरिक ज्ञान का महत्व

भारतीय हिमालयी क्षेत्र में पारंपरिक ज्ञान एक अनमोल धरोहर है जो पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होता आया है। हिमालयी क्षेत्र में जल संरक्षण के पारंपरिक ज्ञान का महत्व अत्यधिक है, क्योंकि यह ज्ञान सदियों से पर्यावरणीय संतुलन और संसाधनों के सतत उपयोग को सुनिश्चित करता आया है। हिमाचल प्रदेश में, घराट (पानी के मिल) और कुल्ह (छोटे जल नहरें) जैसी पारंपरिक प्रणालियाँ जल संरक्षण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। यह ज्ञान प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग, जल संरक्षण की तकनीकें, और जलवायु अनुकूलन के उपाय प्रदान करता है। ये प्रणालियाँ प्राकृतिक संसाधनों का कुशल उपयोग सुनिश्चित करती हैं और जल की बर्बादी को रोकती हैं।इसके अलावा, समुदायों में जल संचयन और प्रबंधन के परंपरागत तरीके जैसे वर्षा जल संचयन और तालाब निर्माण भी प्रचलित हैं। यह पारंपरिक ज्ञान स्थानीय भौगोलिक और जलवायु परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुआ है, जिससे जल संसाधनों का अधिकतम उपयोग संभव हो पाता है। यह प्रणालियाँ न केवल जल संरक्षण में सहायक होती हैं, बल्कि स्थानीय जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र को भी बनाए रखती हैं।

आधुनिक विकास और जलवायु परिवर्तन के दौर में, पारंपरिक जल संरक्षण विधियों का पुनरुत्थान और उन्हें आधुनिक तकनीकों के साथ एकीकृत करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इससे जल संसाधनों की स्थिरता बनी रहेगी और हिमालयी क्षेत्र के लोगों की जल सुरक्षा सुनिश्चित होगी।

परंपरागत ज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समागम

जल सुरक्षा के क्षेत्र में परंपरागत ज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समागम अत्यंत प्रभावी है। वैज्ञानिक अनुसंधान और प्रौद्योगिकी के सहयोग से पारंपरिक ज्ञान को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए जल संग्रहण और सिंचाई प्रणालियों में नए तकनीकी सुधारों को शामिल करके उनकी क्षमता और प्रभावशीलता बढ़ाई जा सकती है।

हिमाचल प्रदेश में जल सुरक्षा के लिए स्थायी जल प्रबंधन की दिशा में कई महत्वपूर्ण कदम उठाये जा रहे हैं। इनमें से कुछ प्रमुख कदम इस प्रकार हैं:

- एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन: जल संसाधनों का एकीकृत प्रबंधन सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न हितधारकों के बीच समन्वय और सहयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है। इसमें सरकारी एजेंसियाँ, गैर-सरकारी संगठन और स्थानीय समुदाय सभी शामिल हैं।

- जल संचयन और सिंचाई प्रणालियों में नए तकनीकी सुधारों का अनुसरण करना एक और महत्वपूर्ण कदम है। वैज्ञानिक अनुसंधान और प्रौद्योगिकी के सहयोग से पारंपरिक ज्ञान को अधिक प्रभावी बनाया जा रहा है। नए और उन्नत तकनीकों का उपयोग करके जल संचयन और सिंचाई प्रणालियों की क्षमता और प्रभावशीलता को बढ़ाया जा रहा है। जिससे कृषि और उद्यानिकी में प्रभावी जल प्रबंधन किया जा सके।

- सभी जल निकायों की गणना, जियो-टैगिंग और सूची बनाना, सभी जिलों में जल शक्ति केंद्रों की स्थापना, गहन वनीकरण और जागरूकता सृजन जैसे कदम हिमाचल सरकार द्वारा जल सुरक्षा के लिए लिए गए हैं।

निष्कर्ष

भारतीय हिमालय और विशेषकर हिमाचल प्रदेश में जल सुरक्षा के संदर्भ में परंपरागत ज्ञान और स्थानीय उपायों का महत्व अत्यधिक है। इन उपायों के माध्यम से जल संसाधनों का संतुलित उपयोग और संरक्षण संभव हो पाता है। जल सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए पारंपरिक ज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समागम आवश्यक है, जिससे स्थायी जल प्रबंधन की दिशा में सार्थक कदम उठाये जा सकें। हिमाचल प्रदेश के स्थानीय समुदायों की भागीदारी और उनकी पारंपरिक ज्ञान प्रणाली इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जल सुरक्षा के इस समग्र दृष्टिकोण से न केवल वर्तमान पीढ़ी बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी जल संसाधनों का संरक्षण संभव होगा।

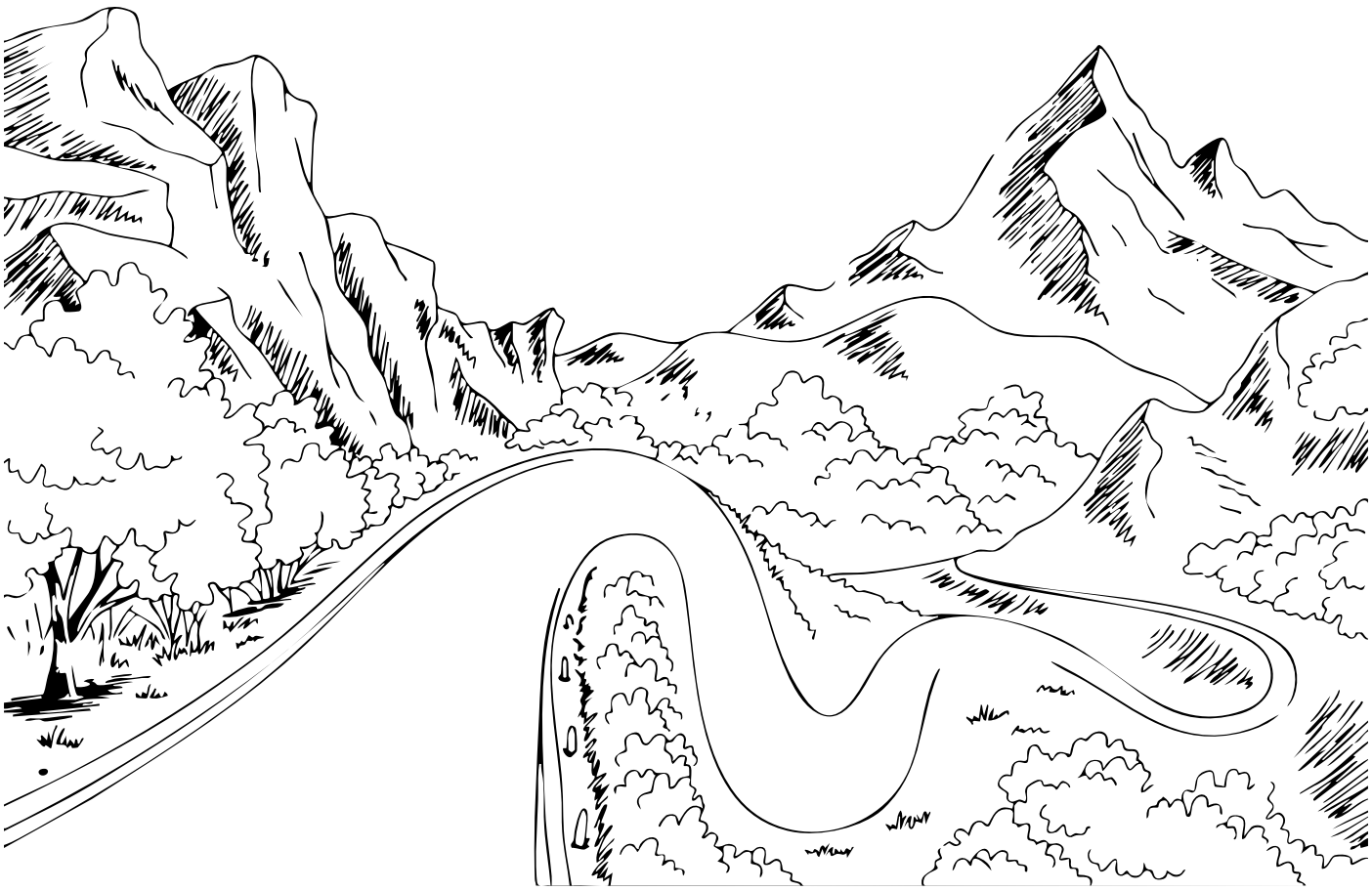

जल संरक्षण के माध्यम से संवेदनशील हेडवाटर जल संसाधनों की सुरक्षा

सौखिन तरफदार
गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, श्रीनगर (गढवाल), उत्तराखण्ड

ऊंचे हिमालयी पहाड, बर्फ और आइस पैक के भंडार के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जबकि वर्षा प्रधान मध्यवर्ती हिमालय, पहाडी ढलानों में भूजल को महीनों तक संग्रहित करने की क्षमता होती हैं, जिससे हेडवाटर धाराओं और झरनों जैसे छोटे जल संसाधनों को पोषित कर पारिस्थितिकी तन्त्र को जीवन प्रदान करती है। लेकिन 'पर्वत विशिष्टताएं' पर्ततों को दुनियाभर में सबसे असुरक्षित क्षेत्र बनाती है। हेडवाटर पहाडी बेसिन का सबसे ऊपरी हिस्सा है और हेडवाटर के तत्वों में पहाडी ढलान, शून्य आ◌ॅर्डर बेसिन, पहले और दुसरे क्रम की धाराएं शामिल हैं। संख्या, लम्बाई, कम गहराई और उच्च सतह क्षेत्र की प्रचुरता के कारण वनाच्छादित हेडवाटर धाराएं, 1. पोषक चक्रण में एक असाधारण भूमिका निभाती है, 2. बाढ़ विनियमन, 3. अन्तप्रवाह जैव विविधता के साथ-साथ डाउनस्ट्रीम नदी प्रजातियों की समृद्धि को बनाए रखना और 4. पानी की गुणवत्ता और मात्रा भी नियन्त्रित करती है। इसके उपरान्त स्प्रिंगफेड धाराएं कई मछली प्रजातियों के अंडे देने और प्रजनन के लिए आवश्यक एक स्थिर थर्मल शासन प्रदान करती है।

पारिस्थितिकी (Ecology) के साथ-साथ जल विज्ञान (Hydrology) में वैज्ञानिक अनुसंधान ने लंबे समय से छोटे जलधारा नेटवर्क, आसपास के परिदृश्य और निचली नदियों के बीच एक मजबूत संबन्धों के आकर्षक सबूत पेश किए हैं। न्यू हैम्पशायर में हबर्ड ब्रुक इकोसिस्टम अध्ययन (एचबीईएस) जैसे दीर्घकालिक वन जलग्रहण अध्ययनों से महत्वपूर्ण शोध निष्कर्ष इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि धाराओं में एक स्व-विनियमन प्रतिक्रिया तन्त्र है जो जंगल और धारा के बीच कार्यात्मक संबंध की गवाही देता है। लेकिन लापरवाह योजनाएं और नीतियों की कमी के परिणामस्वरूप, उदाहरण के तौर पर बार-बार होने वाली मानव निर्मित जंगल की आग, भूमि उपयोग परिवर्तन और जलवायु परिवर्तन, ग्रामीण सड़क विस्तार, सड़क चैड़ीकरण के दौरान उत्पन्न अतिरिक्त तलछट के कारण कई हेडवाटर धाराएं निष्क्रिय हो रहे हैं।

मासिक आधार पर नीले पानी (Blue Water) की कमी के वैश्विक स्तर के आंकलन के हालिया निष्कर्ष आसन्न मौसमी पानी की कमी की ओर इशारा करते हैं। दुनिया की लगभग 180 मिलियन आबादी भारत में रहती है और उन्हें 4 से 6 महीने पानी की कमी का सामना करना पड़ता है। भारतीय हिमालय क्षेत्र (आईएचआर) में विशेष रूप से मध्य पर्वतीय घाटियों में गर्मियों के दिनों में पानी की मांग उत्पन्न होने के कारण मौसमी पानी की कमी दिखाई देती है। मध्य हिमालय क्षेत्रों के गांवों में ग्रीष्मकालीन पानी की उपलब्धता झरनों और धाराओं में पानी की कम मात्रा एवं धान की खेती और घरेलू पानी की मांग के कारण पानी की मांग और आपूर्ति के बीच अंतर उत्पन्न होता है।

मध्य-हिमालयी घाटियों में मौसमी जल की कमी के बढ़ते पदचिन्ह मुख्य रूप से भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून (आईएसएम) द्वारा बदलते मौसमी वर्षा प्रवाह पर निर्भर हैं, जो पिछले तीन से चार दशकों से प्रभावित हो रहा है। पिछली शताब्दी (1901-2012) में भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून (आईएसएम) के दौरान गंगा-ब्रह्मपुत्र घाटियों और हिमालय के तलहटी क्षेत्रों से वर्षा में उल्लेखनीय कमी दर्ज की गई है। वैज्ञानिक शोध यह बताते हैं कि गर्म होते वातावरण के तहत भूमि-समुद्र थर्मल कंट्रास्ट के कमजोर होने के परिणामस्वरूप हुआ है। उत्तराखण्ड में मध्य हिमालयी पर्वत के सबसे अधिक आबादी वाले पर्वतीय क्षेत्र में 1965-1980 की अवधि के बीच मानसूनी वर्षा में गिरावट की प्रवृत्ति की सूचना मिली है। आईएमडी ग्रिड के वर्षा डेटाबेस से पिछले आधे दशक (1951-2008) की अवधि में उत्तराखण्ड की पहाड़ी क्षेत्र के अवलोकन से पता चलता है कि भारत में उच्च तीव्रता वाली वर्षा में वृद्धि हुई है जबकि मध्यम तीव्रता वाली वर्षा में उल्लेखनीय कमी आई है। उत्तराखण्ड में कुल मौसमी वर्षा में कम तीव्रता वाली छोटी अवधि के साथ-साथ कम तीव्रता वाली लम्बी अवधि के योगदान में पर्याप्त कमी दर्ज की गई। वर्षा पैटर्न की अवधि और तीव्रता में इन विशिष्ट परिवर्तनों से पुनर्भरण प्रक्रियाओं में बदलाव आएगा, जिससे सम्भवतः झरने के प्रवाह या निम्न-क्रम धाराओं को बनाए रखने वाले भूजल को खतरा हो सकता है।

क्षेत्रीय जलवायु मॉडलिंग अध्ययनों के आधार पर हाल के साक्ष्य इस ओर इशारा करते हैं कि भूमि उपयोग, भूमि-आवरण परिवर्तन भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून को प्रभावित करने वाले कारकों में से एक कारक हो सकता है। हालांकि ये भूमि उपयोग, भूमि आवरण परिवर्तन बडे पैमाने पर जंगल से कृषि या चारागाह भूमि रूपान्तरण है, लेकिन मध्य हिमालयी क्षेत्रों में सन् 1900 के दशक के मध्य में कृषि भूमि को परती भूमि में बदलने, स्थायी परती और चारागाह भूमि में चिर पाइन जैसे तेजी से बढने वाली प्रजातियां द्वारा क्रमिक वन पुनर्जनन के विपरीत परिवर्तन देखने को मिल रहा है। भारत के उत्तराखण्ड का मध्य पर्वतीय क्षेत्र और साथ ही नेपाल में वनीकरण और चीड पाइन के प्राकृतिक पुनर्जनन के कारण धीरे-धीरे बढते जंगल की बढी हुई वाष्पीकरणीय मांग ने मध्य-हिमालय, जो कि पहले से ही पानी की कमी से जूझ रहा है, फलस्वरूप और भी सूखा ग्रसित क्षेत्र में परिवर्तित हो रहा है।

एक मुकाबला करने की रणनीति के रूप में प्रो0 फाल्कनमार्क ने एक बेसिन पैमाने पर केवल अपवाह (Run off: नीले पानी) के प्रबन्धन से (Soil Mois_ ture) मिट्टी की नमी के साथ-साथ छोटे जलग्रहण पैमाने पर अपवाह (हरे-नीले पानी) के प्रबन्धन पर ध्यान केन्द्रित करने पर जोर दिया। भूमि जल प्रबन्धन के माध्यम से ना सिर्फ अपवाह के प्रबन्धन बल्कि वर्षा एवं अपवाह दोनों के प्रबन्धन के इस नए बदलाव को सामने रखा गया था, लेकिन जटिल स्थलाकृति द्वारा नियन्त्रित स्थानिक और अस्थायी रूप से परिवर्तनशील वर्षा का विवेकपूर्ण प्रबन्धन अभी भी एक चुनौती है। जलवायु में अंतर्निहित जटिलता, जटिल स्थलाकृति में हाइड्रोजियोजॉजी के साथ-साथ भारतीय हिमालयी क्षेत्र में वैज्ञानिक आंकडों की गम्भीर कमी को समझते हुए, मानसून और मानसून के बाद के महीनों के दौरान उपलब्ध अधिशेष प्रवाह के भण्डारण आधारित संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित करना विवेकपूर्ण होगा। वैज्ञानिक आंकडों द्वारा समर्थित प्रभावकारिता को वास्तव में प्रदर्शित किए बिना, वनस्पति या मिट्टी और जल इंजीनियरिंग विधियों के माध्यम से पूरे भारतीय हिमालय में विभिन्न राज्यों में सूखने वाले झरनों को जियो-टैग और पुनर्भरण करने का मिशन चल रहा है। एक ऐसे युग में जब पानी एक सीमित संसाधन बन रहा है और ग्रामीण संपर्क सुधार परियोजनाओं के माध्यम से न केवल परिदृश्य बल्कि धाराओं और नदी नेटवर्क में भी बडे पैमाने पर परिवर्तन हो रहा है और पारिस्थितिक रूप से संवेदलशील और नाजुक पहाड को प्रभावित करने वाले बांध बन रहे हैं। हिमालय की नदियों के गैजिंग स्टेशनों का संवर्धन सबसे बडी प्राथमिकता बननी चाहिए। दीर्घकालीन जल आपूर्ति आवश्यकताओं को सुनिश्चित करने के लिए स्त्रोत जल संरक्षण अधिनियम के माध्यम से पारम्परिक प्रमुख छोटे जल संसाधनों की रक्षा की जानी चाहिए।

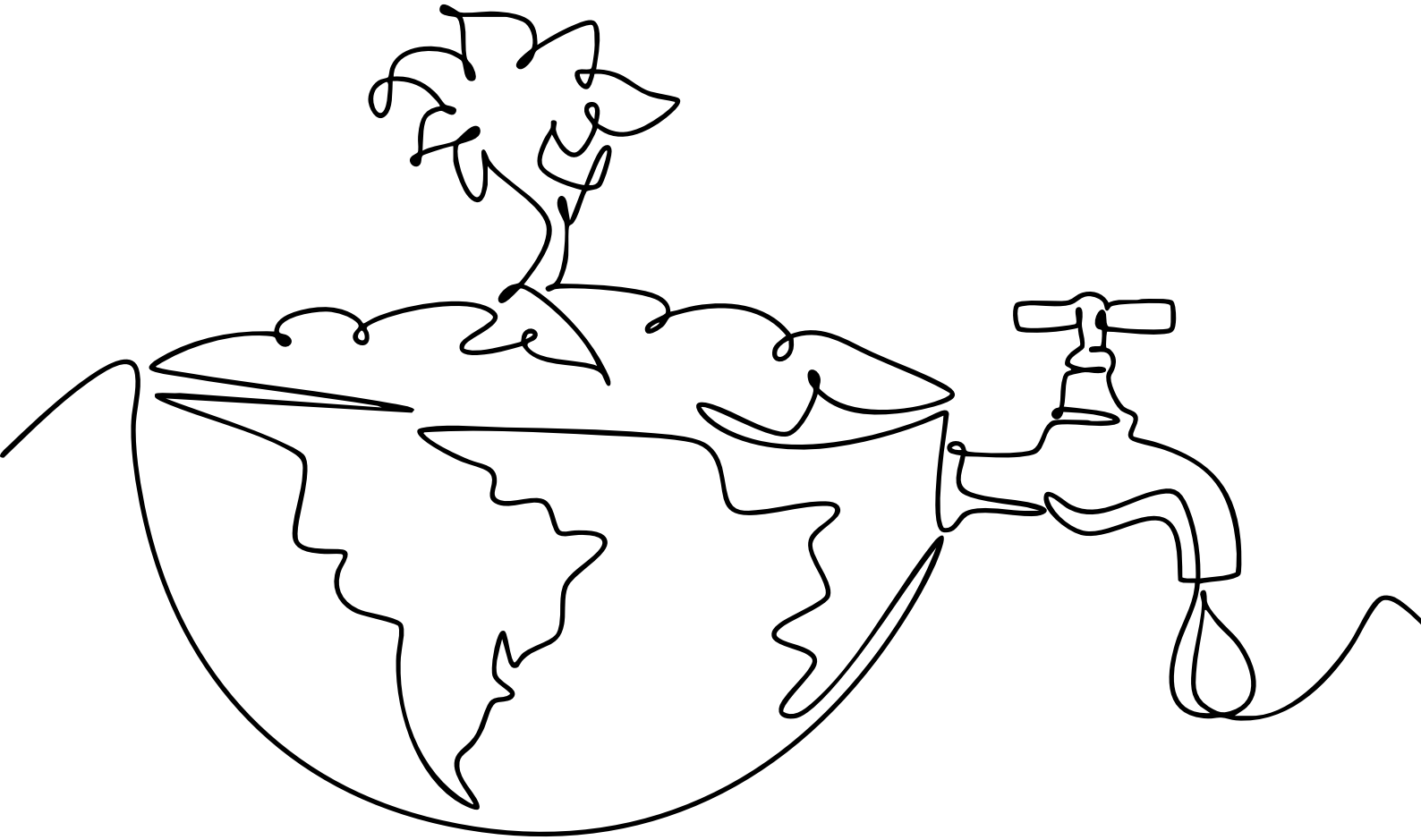

भारतीय हिमालय क्षेत्र में बाढ़ खतरा प्रबंधनः रोकथाम, चुनौतियाँ और समाधान

डिम्पल कुमारी, राकेश कुमार सिंह, रेनू लता
गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, मौहल कुल्लू, हि.प्र.

भूमिका

भारतीय हिमालय क्षेत्र (आइ एच आर) विविधता और भव्यता के लिए प्रसिद्ध है। लेकिन बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के प्रति भी यह क्षेत्र बहुत संवेदनशील है। जलवायु परिवर्तन, अव्यवस्थित शहरीकरण, वनों की कटाई और बढ़ती आबादी ने बाढ़ का खतरा बढ़ा दिया है। इस शोध पत्र में बाढ़ खतरा प्रबंधन के आईएचआर पहलुओं पर चर्चा, जिसमें रोकथाम, चुनौतियों और समाधानों पर ध्यान केंद्रित किया गया है।अस्थिर भूविज्ञान और पहाड़ी इलाकों की सीमित या सीमांत पहुंच इन खतरों को और त्रासदी की संभावना को बढ़ाती है। देशभर के कुल 329 मिलियन हेक्टेर भौगोलिक क्षेत्र में से 40 मिलियन हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र बाढ़ के प्रति संवेदनशील है। बाढ़ एक सामान्य घटना है जिसके परिणामस्वरूप जीवन की महत्वपूर्ण हानि के साथ-साथ संपत्ति, बुनियादी ढांचे, सार्वजनिक सेवाओं और आजीविका प्रणालियों को भी नुकसान होता है। यह तथ्य चिंताजनक है कि बाढ़ से होने वाली क्षति में बढ़ोतरी हो रही है। पिछले दस वर्षों में, 1996 से 2005 तक, औसत वार्षिक बाढ़ क्षति रु. 4745 करोड़, जबकि पिछले 53 वर्षों के लिए समान औसत रु. 1805 करोड़ की वार्षिक बाढ़ क्षति हुई है। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि, क्षेत्रों का त्वरित शहरीकरण, बाढ़ के मैदानों में वाणिज्यिक और निर्माण गतिविधियों का विस्तार और ग्लोबल वार्मिंग जैसे कई कारकों को इसके लिए दोषी ठहराया जा सकता है। औसतन, बाढ़ सालाना 1-5 मिलियन हेक्टेयर भूमि को नष्ट कर देती है, 1600 लोगों की जान ले लेती है, और घरों, फसलों और सार्वजनिक सेवाओं को रु0 1805 करोड़ की बड़ी हानि हुई । पिछले 30 वर्षों में लगभग 50 मिलियन लोग प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित हुए हैं, जिनमें से आधे मामले बाढ़ के कारण हैं। बाढ़ से हुई क्षति की वैश्विक आर्थिक लागत लगभग 11 मिलियन अमेरिकी डॉलर होने का अनुमान है। भारतीय हिमालय क्षेत्र (आइ. एच आर) में देश की बढ़ी नदियों का उद्गम स्थान तथा जल निकासी क्षेत्र होने के कारण बड़ी बाढ़ लगभग हर साल आती है। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय प्रणालियों की अपनी विविध श्रृंखला के कारण, भारतीय हिमालय क्षेत्र भूस्खलन, बादल फटने, हिमनद झील विस्फोट और भोजन की कमी जैसी जल-मौसम संबंधी आपदाओं के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील है। यह इस क्षेत्र को देश की जल, ऊर्जा और भोजन की आपूर्ति के लिए महत्वपूर्ण बनाता है।

बाढ़ आपदा प्रबंधन

प्राकृतिक आपदाओं के सक्रिय प्रबंधन में बदलाव के लिए, जोखिमों की पहचान की, जोखिमों को कम करने के लिए रणनीतियाँ विकसित करना और योजनाओं को लागू करने के लिए नीतियां और कार्यक्रम विकसित किए जाने चाहिए। बाढ़ जोखिम प्रबंधन आवश्यक है क्योंकि यह भूमि और जल संसाधनों के सर्वोत्तम संभव उपयोग और दोहन की अनुमति देता है, जो राष्ट्रीय धन और सतत विकास को बढ़ावा देता है। भारत में बाढ़ नियंत्रण का प्रबंधन संघीय, राज्य और स्थानीय स्तर पर किया जाता है। संघीय सरकार राज्यों को निर्देश देती है, जिसके बाद वे क्षेत्र स्तर पर बाढ़ का प्रबंधन करते हैं। गृह मंत्रालय और जल संसाधन मंत्रालय दो प्राथमिक केंद्रीय स्तर की एजेंसियां हैं। गंगा और ब्रह्मपुत्र जैसी प्रमुख नदियों के लिए, केंद्र सरकार ने संबंधित मंत्रालयों, आयोगों और तकनीकी सहायता संगठनों के अलावा नदी बोर्ड की स्थापना की है। प्रधानमंत्री ने देश के संकट परिदृश्यों की जांच के लिए संकट प्रबंधन पर एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया है। हिंदू कुश हिमालय में आई.सी.आई.एम.ओ.डी. कार्यक्रमों के माध्यम से समुदाय-आधारित बाढ़ प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली (सी.बी.एफ.ई.डब्लू.एस.) का संचालन, उन्नयन और संचालन किया जा रहा है। वे कम लागत वाली, समुदाय द्वारा संचालित प्रणालियाँ हैं जिन्हें संचालित करना और मरम्मत करना आसान है और जो नदियों के बढ़ने पर तुरंत चेतावनी देती हैं। भारत में आपदा प्रबंधन का शीर्ष निकाय प्रधानमंत्री की अगुवाई में राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (एन.डी.एम.ए.) है। 2005 आपदा प्रबंधन अधिनियम ने राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण की स्थापना और राज्य और जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरणों के लिए सुरक्षित वातावरण की आवश्यकता बताई है। भारत मे राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (एन.डी.एम.ए.) द्वारा बाढ़ की स्थिति में “क्या करें, क्या न करें” की सूची जारी की है।

जोखिम प्रबंधन एक मुख्य गतिविधि है जिसे किसी खतरे के घटित होने की संभावना का मूल्यांकन करने और एक विशिष्ट आकार और आवृत्ति की घटना के संभावित नतीजों के बारे में जानकारी प्रदान करने के लिए डिजाइन किया गया है। इस प्रारंभिक कार्य के आधार पर, कई शमन रणनीतियों का मूल्यांकन यह निर्धारित करने के लिए किया जा सकता है कि वे कितनी अच्छी तरह काम करते हैं। संपूर्ण जोखिम मूल्यांकन के आधार पर आपदा प्रबंधन योजनाओं और विशेष शमन उपायों की पहचान करना संभव है।

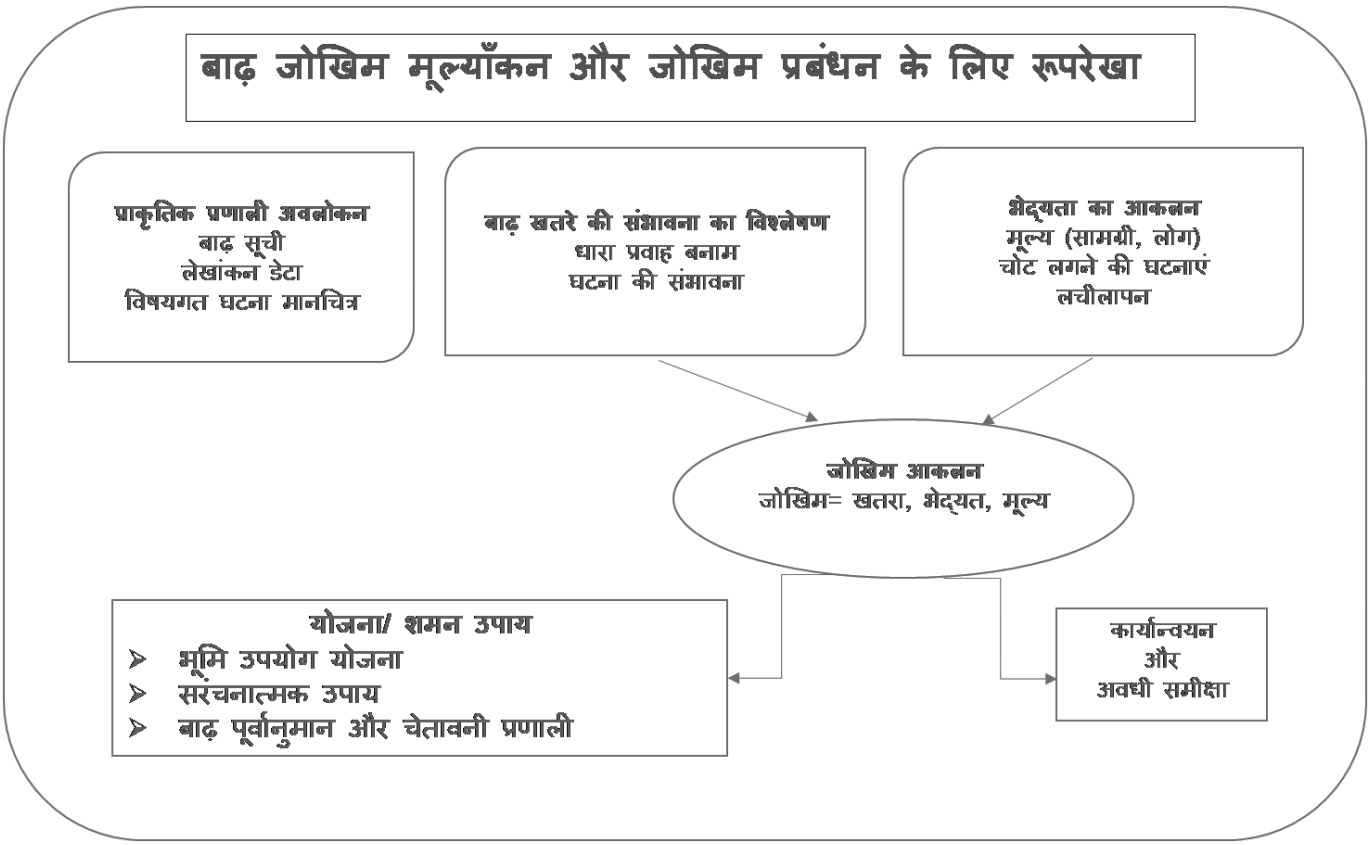

बाढ़ संभावित क्षेत्र का रेखांकन

बाढ़ खतरा प्रबंधन योजना बनाने के लिए बाढ़ के पानी से प्रभावित चिन्हित क्षेत्र का नक्शा तैयार किया जाना आवश्यक है। पिछली बाढ़ की घटनाओं की जानकारी का उपयोग करके, ऐसे स्थानों की पहचान की जा सकती है जहां बाढ़ आने का खतरा है।

भेद्यता विश्लेषण

संवेदनशीलता अध्ययन में, बाढ़ प्रवण क्षेत्र में संरचनाओं और लोगों को ध्यान में रखा जाता है। विश्लेषण में सड़कों, पुलों, इमारतों, फसलों और उपयोगिताओं सहित महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचे की मरम्मत के संदर्भ में बाढ़ के संभावित खर्चों का आकलन किया जाता है। चूँकि यह अध्ययन सबसे अधिक जोखिम वाली आबादी को इंगित करता है, इसलिए इसका उपयोग यह निर्धारित करने के लिए भी किया जा सकता है कि अस्थायी आश्रयों और निकासी योजनाओं की आवश्यकता जैसे आपातकालीन उपाय आवश्यक हो सकते हैं।

बाढ़ के विनाश के परिणाम के साथ साथ, बाढ़ के कुछ लाभ भी है। दरअसल, बाढ़ अपने साथ पहाड़ी इलाकों की उपजाऊ मीठी निचले मैदानी इलाके मे लाकर बाढ़ के मैदान तैयार करती है, जो कृषि के लिए उपजाऊ माने जाते है। इसके अलावा, बाढ़ नदी का पुनर्जीवन करने मे सहायक है। रेत-पत्थर और अवसाद के जमा होने से संकरी हो चुकी नदी के चैनलों को बाढ़ साफ करती है, जिससे नदी फैलती है और फिर से अपने पुराने स्वरूप में आ जाती है।

समाधान

वास्तविक समय आँकड़ा संग्रहण प्रणाली (Real Time Data Collection System) का उपयोग करते हुए बाढ़ पूर्वानुमान को देश भर में व्यापक रूप से विस्तार किया जाना चाहिए और बाढ़ का सामना करने के लिये तैयार रहने के लिये महत्वपूर्ण है।

राष्टीय जल नीति 2012 में बाढ़ तथा सूखे जैसी प्राकृतिक आपदा से बचने के लिए संरचनात्मक एवं गैर-संरचनात्मक उपायों के माध्यम से रोकथाम के हर संभव प्रयासों की नीति बनाई गई है। बाढ़ के खतरे को रोकने और कम करने के लिए चक बांध, जलाशय, तटबंध और नदी तटीकरण आदि जैसे संरचनात्मक उपाय लागू किए जाने चाहिए।

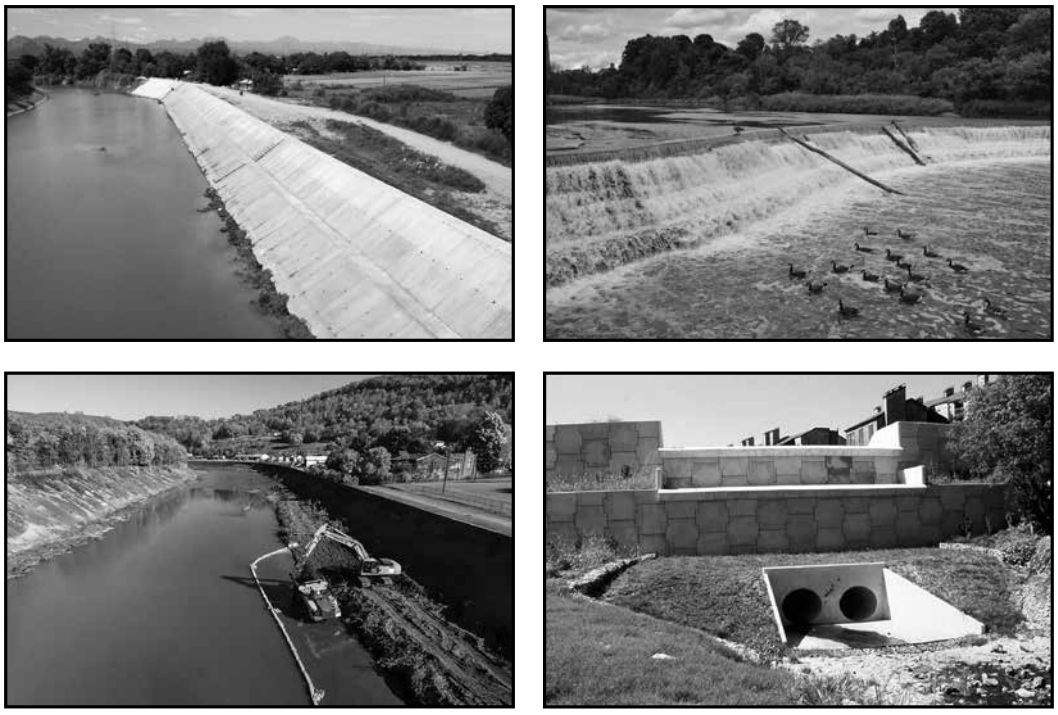

बाड़ की रोकथाम के लिए संरचनात्मक उपाय

युवा पीढ़ी और सामाजिक परिवर्तन-आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

महेश चन्द्र सती
गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, कोसी कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

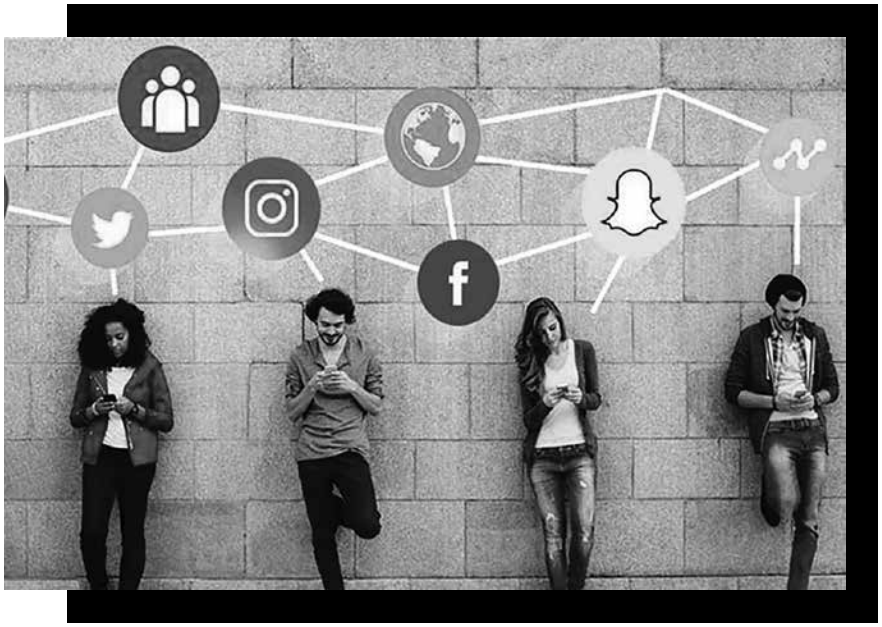

मानव जीवन चकाचौंध की इस सभ्यता में अपना अतीत, संस्कार और सभ्यता को खोता जा रहा है। अपनी भोग विलासिता और दिखावे की लत ने मनुष्य को न केवल स्वार्थी बना दिया है, अपितु समाज से अलग एक नए जाति का प्राणी बना दिया है। आने वाली युवा पीढ़ी को जब हम ज्यादा नहीं दो दशक पुरानी बातों को भी बतायें तो उसे ये सब मिथ्या लगेंगी और शायद ही वह उन पर विश्वास करे। जहां एक ओर हम अपने आप को विकसित और तकनीकी से लैस समझ रहे हैं वहीं दूसरी ओर या तो हमारा ध्यान नहीं जा पा रहा है, या हम जान बूझकर शर्मिंदगी के कारण चुप बैठे हुए हैं। दिखावे की जिंदगी में मानव आतंरिक तौर पर पूर्ण रूप से खोखला हो गया है। जरा दो दशक पुरानी यादों को ताजा करे तो क्या खुशमिजाज पल थे वो जब मनुष्य को अपना और पराया का एहसास था। फिर चाहे कोई शादी समारोह हो या त्यौहार उसे उसकी मातृभूमि अपनी ओर खींच लेती थी, तभी वह समाज के हर वर्ग के लोगों से सदैव जुड़ा रहता था। बदलते परिवेश और मानव की स्वार्थी सोच ने उसे अकेलेपन की ओर खींच लिया है। आज हमारे समाज के सबसे बड़े माने जाने वाले त्यौहार जैसे होली, दीपावली में जरा अपने मातृ भूमि की तरफ झांककर देखें तो मातृभूमि वीरान लगती है। आज से दो दशक पुरानी मानव की सोच और आज की सोच में ही धरती आसमान का फर्क आ गया है। आज मानव के लिए उसके कार्यस्थल या आजीविका अर्जन का स्थल ही सब कुछ बन चूका है उसके पास न अपनों से मिलने का समय है और ना ही अपनी मातृ भूमि का मायामोह। शायद यही उसकी जिंदगी में आए तकनीकी परिवर्तन का असर है।

यह कटु सत्य है कि प्राचीन और आज के मानव की सोच और मानसिकता में काफी परिवर्तन आ गए हैं। मानव जीवन में हुए कुछ मुख्य परिवर्तनों को इस तरह समझा जा सकता है-

जन्म काल के स्तर पर

प्राचीन काल में सभी बच्चों का जन्म कुशल दायियों के दिशा निर्देशन में स्वयं उनके घर पर होता था और सुरक्षित प्रसव होता था। बदलते समय और मानवीय सोच में इन दायियों की जगह महंगे अस्पतालों या नर्सिंग होम ने ले ली। संतान उत्पति से ही अभिभावकों को कर्ज के बोझ की आदत पड़ गयी और इन महंगे अस्पतालों में भी सुरक्षित प्रसव की कोई गारंटी नहीं मिलती। अगर आंकड़ों पर अपना ध्यान केंद्रित करें तो गिने चुने प्रसव ही बिना सिजेरियन के होते होंगे। समय के काल चक्र के प्रभाव से मानव जन्म भी अछूता नहीं रहा।

पालन-पोषण के स्तर पर

बच्चों के पालन पोषण में भी काफी परिवर्तन देखने को मिल रहा है आजकल सभी वर्ग के लोग फिर चाहे उनका आर्थिक स्तर कैसा ही क्यों ना हो, बच्चों के लालन पालन में आधुनिकता की कमी महसूस नहीं होने दे रहे हैं। यहाँ तक कि बच्चों को मिलने वाले मां के दूध की जगह बाजार के दूध ने ले ली है। बच्चों में माता पिता की ममता का कम होने का कारण शायद यह भी हो सकता है।

खानपान के स्तर पर

आधुनिक जीवन शैली में मानव का खानपान भी काफी प्रभावित हुआ है। प्राचीन काल में सभी के द्वारा घर के और घर में बने खानपान का अधिकाधिक

प्रयोग किया जाता था। जिसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या कम से कम देखने को मिलती थी। आधुनिक समय में ठीक इसके विपरीत बाहर के खानपान का प्रचलन बढ़ गया है। पहले तो घर में उत्पादन ही कम हो रहा है। जो हो भी रहा है दिखावे की जीवनशैली में मानव को उसके प्रयोग में भी शर्म महसूस हो रही है और वह पूर्णतया बाहर की वस्तुओं पर निर्भर है। जिसके परिणामस्वरूप समाज के हर आयु वर्ग का व्यक्ति किसी न किसी बीमारी से जरूर ग्रसित है।

मानव श्रम के स्तर पर

प्राचीनकाल में मानव अपनी आवश्यकता के अनुरूप स्वयं श्रम करता था जिससे उसका स्वास्थ्य भी ठीक रहता था और कार्य भी हो जाता था। यात्रा हेतु भी वह वाहनों का कम से कम प्रयोग करता था। आधुनिक परिपेक्ष्य में अगर देखा जाय तो मानव ने अब श्रम करना और पैदल चलना बिल्कुल छोड़ दिया है वह इनके लिए पूर्ण रूप से मशीनों इत्यादि पर निर्भर हो गया है। श्रम और पैदल चलने की आदत छूट जाने के कारण उसे स्वास्थ्य सम्बंधित समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

शिक्षा के स्तर पर

प्राचीन काल में शिक्षा की शुरुआत आश्रमों से हुई जिसमें शिक्षार्थी नियमानुसार सभी शिक्षा आश्रम में ही रहकर लेता था और पारंगत होने पर ही आश्रम से वापस आता था। समय का दौर बदला और आश्रमों का स्थान सरकारी स्कूलों ने और सरकारी स्कूलों का स्थान महंगे कान्वेंट स्कूलों ने ले लिया। महज स्कूली शिक्षा से विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास नहीं होने की धारणा ने विद्यार्थियों को स्कूल के अतिरिक्त ट्यूशन के लिए भी मजबूर कर दिया है। बदलते सामाजिक परिवेश ने अब उसकी स्वयं की शिक्षा भी अपना प्रभाव दिखा दिया है।

परिवार के स्तर पर

शिक्षा के बाद जब वे दाम्पत्य जीवन में बंधते हैं तो यहाँ से आधुनिकता की मुख्य परीक्षा शुरू हो जाती है। अब उन्हें माँ बाप का साथ देना है या फिर बीबी का? यह विषय उनके सामने एक भयंकर चुनौती बन जाता है। परिणामस्वरूप माता पिता और सामाजिक रिश्तों से दूरी बन जाती है और एक नए जीवन का जन्म होता है। एक ऐसा जीवन जिससे परिवार, समाज और सारे बंधन अलग हो जाते हैं और व्यक्ति आधुनिकता की चकाचैंध या तकनीकी जीवन में प्रवेश करता है।

रहन-सहन के स्तर पर

जहां हमारे बुजुर्ग और पुराने लोग फिर चाहे वो कितने ही सक्षम क्यों ना हों घरों में कच्चे मकानों का ही निर्माण करते थे। आज मानव ने अपने स्वार्थ के कारण धरा को वृक्षों की जगह कंक्रीट का जंगल बना दिया है। न जाने इसे बुजुर्गों की अज्ञानता की संज्ञा देनी उचित होगी या हमारा तकनीकी विकास जो हमने स्वयं अपने आप को जानबूझकर संकट में डाल दिया है।

सामाजिक जीवन के स्तर पर

पुराने समय में चाहे कितना ही बड़ा उत्सव या आयोजन क्यों ना हो, समाज के उसी वर्ग के लोगों द्वारा श्रमदान करके संपन्न किया जाता था। लेकिन आज एक छोटे से 20 व्यक्तियों के खानपान इत्यादि आयोजन के लिए भी हमारे पास समय और स्थान नहीं है और उसके लिए हमें कार्यक्रम प्रबंधक या रिजॉर्ट इत्यादि की आवश्यकता महसूस हो रही है।

मानसिकता के स्तर पर

प्राचीन काल में लोग जो सबसे मिलकर और संसाधन साझा करके अपना जीवन व्यतीत करते थे वही आज मनुष्य सबसे मुँह फेरकर और अपने आप तक सीमित होता जा रहा है। पहले लोगों का समाज उसका गांव और समुदाय हुआ करता था लेकिन आज उसके अपने अपार्टमेंट या फ्लैट तक ही वह सीमित है। प्राचीनकाल में गाय भैसों का पालन किया जाता था आज विभिन्न नस्लों के पालतू कुत्तों का, शायद यही परिवर्तन है मानसिकता और समय का।

धार्मिकता के स्तर पर

प्राचीनकाल में हर कार्य नियमानुसार किये जाते थे कुछ धार्मिक स्थलों में या समय विशेष में महिलाओं के प्रवेश पर रोक थी। जन्म और मृत्यु आदि कुछ अवसरों पर पूजा पाठ इत्यादि कार्य नहीं किये जाते थे। आधुनिकता के दौर ने इन सबको पीछे और झूठा साबित कर दिया है, अब ये सब मिथ्या मात्र बने हुए हैं। पहले धामों आदि पवित्र स्थलों में समय विशेष के अनुसार जाया जाता था आज मानव की इच्छानुसार।

लाइफस्टाइल के स्तर पर

इसे मानव की मजबूरी समझे या नादानी जो उसने इस तकनीकी लाइफस्टाइल में अपने माता-पिता तक से दूरिया बना ली हैं। जहां आज की पीढ़ी के नौजवान फिर चाहे वो महानगरों में कितनी मुसीबतें और धक्के खा रहे हो लेकिन अपने सीमित परिवार पति, पत्नी और अधिकतम दो बच्चों तक ही सीमित रह गए हैं। मनुष्य अपने पालतू जानवरों को बिना संकोच के यदा कदा घुमा रहा है लेकिन अपने परिवार और समाज के साथ चलने में शर्म महसूस कर रहा है। मनुष्य तकनीकी और मोबाइल इन्टरनेट के युग में अपने से बिछड़ते और दूर होते जा रहा है जो सोचनीय है।

महाकवि मैथलीशरण गुप्त ने अपनी एक कविता में कहा है- वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिये मरे। लेकिन आधुनिकता के दौर में यह झूठी साबित होती जा रही है। जब तक मानव की सोच और मानसिकता नहीं बदलती है और उसे मानव जाति का असल मूल्य समझ नहीं आता तब तक यह समाज के लिए नुकसानदायी है। हमें आधुनिकता के दौर में भी अपने रीति रिवाज और संस्कारो से मुंह नहीं मोड़ना चाहिए। क्योंकी समय का यही तांडव अगर लगातार चलता रहेगा तो वो दिन दूर नहीं जब मनुष्य अपनों को भी पहचानने को तैयार नहीं रहेगा।

पूर्वोत्तर भारत में संकटग्रस्त स्तनधारी जीवों की स्थिति

विशाल कुमार माझी, सौमिक महापात्र, शिवम कुमार, मृगांक शेखर सरकार
गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, उत्तर-पूर्व क्षेत्रीय केंद्र, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश

परिचय

पूर्वोत्तर भारत भारतीय-मलय, इंडो-चीनी और भारतीय जैव-भौगोलिक क्षेत्रों के लिए एक अद्वितीय अभिसरण बिंदु के रूप में खड़ा है, जो अपने आठ राज्यों अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम, त्रिपुरा, और पश्चिम बंगाल के उत्तरी भाग में फैली अद्वितीय जैव विविधता और पर्यावास विविधता का दावा करता है (चित्र 1)। लगभग 273,163 वर्ग किमी में फैला यह क्षेत्र उष्णकटिबंधीय पर्णपाती जंगलों से लेकर उच्च ऊंचाई वाले अल्पाइन क्षेत्रों तक पारिस्थितिक तंत्र की एक श्रृंखला को प्रदर्शित करता है, जिसमें हिमालय की तलहटी के विशिष्ट पर्यावास भी शामिल हैं। बाघ संरक्षण में अपने महत्व के लिए विश्व स्तर पर मान्यता प्राप्त पूर्वोत्तर भारत, में बहुत सारी प्रजातियाँ हैं, जो निकटवर्ती दक्षिण पूर्व एशियाई जंगलों के साथ समानता रखती हैं। अपनी पारिस्थितिक समृद्धि और संरक्षित क्षेत्रों के व्यापक जाल के बावजूद - जिसमें 24 राष्ट्रीय उद्यान, 68 वन्यजीव अभयारण्य, 3 संरक्षण रिजर्व और 208 सामुदायिक रिजर्व शामिल हैं - इस क्षेत्र को पर्यावास ह्रास, अवैध शिकार और मानव-वन्यजीव संघर्षों से आसन्न खतरों का सामना करना पड़ता है। इसके जटिल सामाजिक-पारिस्थितिक परिदृश्य के लिए गहन विश्लेषण और ठोस संरक्षण प्रयासों की आवश्यकता है। पूर्वोत्तर भारत में खतरे में पड़े स्तनधारियों की दुर्दशा को संबोधित करना, उनके अस्तित्व को खतरे में डालने वाले कारकों की जटिल परस्पर क्रिया को देखते हुए, व्यापक संरक्षण रणनीतियों की तत्काल आवश्यकता को रेखांकित करता है।

जैव विविधता का खजाना

पूर्वोत्तर भारत, अपने विविध स्तनधारी जीवों की सुरक्षा में एक गंभीर चुनौती का सामना कर रहा है। रोयल बंगाल टाइगर से लेकर शर्मीले प्रवृति का लाल पांडा तक, ये प्रजातियाँ क्षेत्र के पारिस्थितिक संतुलन और सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न अंग हैं। पूर्वोत्तर भारत के जंगल और घास के मैदान स्तनधारी प्रजातियों की एक उल्लेखनीय श्रृंखला से भरे हुए हैं, जिनमें से प्रत्येक अपने अद्वितीय पर्यावास के लिए अनुकूलित है। असम के घने जंगलों से लेकर अरुणाचल प्रदेश के बीहड़ इलाकों तक, ये स्तनधारी विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में निवास करते हैं, जो इस क्षेत्र के पारिस्थितिक महत्व को रेखांकित करते हैं। विश्व स्तर पर, बड़े स्थलीय स्तनधारी दुनिया में सबसे अधिक खतरे में हैं, जिनकी 25 प्रतिशत प्रजातियाँ खतरे में हैं। हाल के अध्ययनों से पता चलता है कि दक्षिण एशिया में सबसे अधिक खतरा स्थलीय स्तनधारियों का है। भारत के संरक्षणात्मक अनुमानों से संकेत मिलता है कि 20 प्रतिशत बड़ी स्तनपायी प्रजातियाँ विलुप्त होने का सामना कर सकती हैं, और कई प्रजातियाँ अपनी मूल सीमा के 90 प्रतिशत से अधिक से पहले ही गायब हो चुकी हैं। भारत भर में बताई गई मौजूदा 428 स्तनधारी प्रजातियों में से लगभग 291 प्रजातियाँ भारतीय हिमालय क्षेत्र से दर्ज की गई हैं। पूर्वोत्तर भारत में 269 स्तनपायी प्रजातियाँ हैं, जो 136 जीनस, 38 परिवार और 11 ऑर्डर से संबंधित हैं। उनमें से 48 खतरे में हैं, और 13 पूर्वोत्तर भारत के लिए स्थानिक हैं।

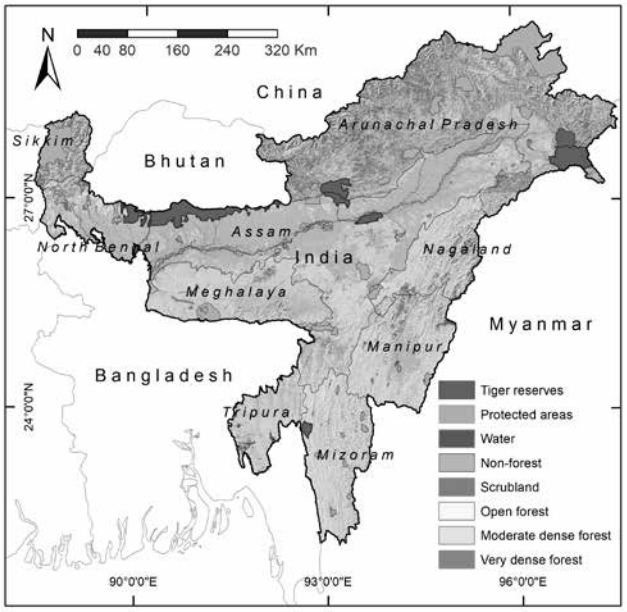

चित्र 1: पूर्वोत्तर भारत के अध्ययन क्षेत्र को दर्शाने वाला मानचित्र जिसमें उसके वन प्रकार और संरक्षित क्षेत्रों को दर्शाया गया है

असम में समृद्ध स्तनधारी विविधता है जिसमें स्तनधारियों की 160 प्रजातियाँ शामिल हैं, इस प्रकार देश की स्तनधारी विविधता का लगभग 60 प्रतिशत यहाँ निवास करता है। मेघालय स्तनधारियों की 170 प्रजातियों के लिए जाना जाता है, मणिपुर में 113 स्तनधारी हैं, मिजोरम में 120 प्रजातियाँ हैं, उत्तरी पश्चिम बंगाल में 135 प्रजातियाँ हैं, त्रिपुरा स्तनधारियों की लगभग 82 प्रजातियों का घर है, नागालैंड में स्तनधारियों की 126 प्रजातियाँ हैं, और प्रजातियों की संख्या सबसे अधिक अरुणाचल प्रदेश से (172) स्तनधारियों को दर्ज किया गया है। यह जानकारी निश्चित रूप से पूर्वोत्तर भारत में स्तनधारी प्रजातियों की समृद्धि का संकेत देती है।

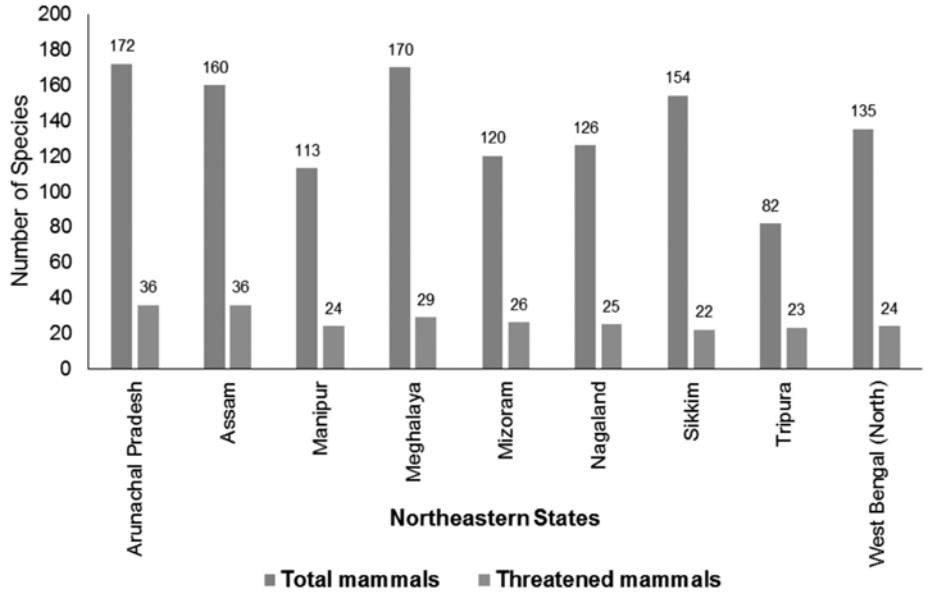

चित्र 2: पूर्वोत्तर राज्यों में कुल स्तनधारियों और संकटग्रस्त स्तनधारियों की संख्या को दर्शाने वाला बार ग्राफ

पूर्वोत्तर भारतीय स्तनधारियों के मामले में, दो प्रजातियाँ गंभीर रूप से विलुप्तप्राय हैं, 24 असुरक्षित, 22 विलुप्तप्राय हैं। इन सभी प्रजातियों को तत्काल संरक्षण की आवश्यकता है। इसके अलावा, पूर्वोत्तर भारत में 13 स्थानिक स्तनधारी हैं जिनका संरक्षण सर्वोच्च प्राथमिकता है। संकटग्रस्त स्तनधारी प्रजातियों की संख्या में से सबसे ज्यादा अरुणाचल प्रदेश और असम (36), इसके बाद मेघालय (29), मणिपुर (44), पश्चिम बंगाल (उत्तर) (41), सिक्किम (40), नागालैंड (38), मिजोरम (33), और त्रिपुरा में सबसे कम संख्या (28) है (चित्र 2)।

पूर्वोत्तर राज्यों में संकटग्रस्त स्तनधारियों की स्थिति

अरुणाचल प्रदेश

अरुणाचल प्रदेश, जो भारत में सूर्य की पहली किरणें प्राप्त करने के लिए जाना जाता है, अत्यधिक विविध और पहाड़ी इलाका है, जिसकी ऊँचाई असम में 120 मीटर से लेकर चीन के पास 7000 मीटर से अधिक है। यह क्षेत्र हरे-भरे जंगलों, गहरी नदी घाटियों और खूबसूरत पठारों से भरपूर है, जिसमें जनजातीय संस्कृतियों की समृद्ध विविधता और असाधारण जैव विविधता मौजूद है। भारत के दो जैव विविधता हॉटस्पॉट में से एक के रूप में पहचाने जाने वाले, इसकी अनूठी वनस्पतियों और जीवों को स्वदेशी समुदायों द्वारा संरक्षित किया गया है। उष्णकटिबंधीय, उष्णकटिबंधीय अर्ध-सदाबहार, उपोष्णकटिबंधीय, शीतोष्ण और अल्पाइन प्रकारों में वर्गीकृत अरुणाचल प्रदेश के जंगल अलग-अलग ऊंचाई पर पनपते हैं। स्तनधारियों सहित जीव-जंतु, पैलीआर्कटिक, इंडो-चीनी और इंडो-मलय प्रभावों का मिश्रण दर्शाते हैं। रिपोर्ट किए गए स्तनधारियों में से 37 प्रजातियों को भारतीय वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 की अनुसूची 1 के तहत वर्गीकृत किया गया है। अरुणाचल प्रदेश भारत का एकमात्र राज्य है जहां तीन बकरी जाति के मृग पाए जाते हैं जैसे *नेमोरहेडस गोरल, एन. सुमात्रैन्सिस* और *बुडोरकास टैक्सीकलर*। शायद यह एकमात्र राज्य है जो चार प्रमुख बड़ी बिल्लियों को आश्रय देता है जैसे बाघ, तेंदुआ, क्लाउडेड तेंदुआ और हिम तेंदुआ। डी. एरिंग वन्यजीव अभयारण्य, पासीघाट से अत्यधिक लुप्तप्राय हिस्पिड खरगोश के पाये जाने की भी सूचना मिली है। गंभीर रूप से लुप्तप्राय चीनी पैंगोलिन और नामदाफा उड़ने वाली गिलहरी संरक्षण प्रयासों की तत्काल आवश्यकता हैं।

सिक्किम

सिक्किम भारत के भौगोलिक क्षेत्र का सिर्फ 0.22 प्रतिशत है, फिर भी बहुत अधिक जैविक विविधता को दर्शाता है। बहुत कम दूरी के भीतर लगभग 300 मीटर से 8,598 मीटर तक की विशाल ऊंचाई भिन्नता राज्य के विभिन्न इको-क्षेत्रों के लिए जिम्मेदार है। यह दक्षिण में तराई की रंगित घाटी में साल के जंगलों की उपस्थिति से उत्तर में समशीतोष्ण देवदार के जंगलों से स्पष्ट है, जिसके आगे ट्रांस-हिमालय और तिब्बती पठार का ठंडा रेगिस्तान है।

सिक्किम के उष्णकटिबंधीय इको-क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण स्तनधारी प्रजातियां शामिल हैं, जिनमें असमिया मकाक और चीनी पैंगोलिन शामिल हैं।

सिक्किम के उपोष्णकटिबंधीय इको-क्षेत्र में लाल पांडा और तेंदुआ हैं। समशीतोष्ण इको-क्षेत्र में लाल पांडा,पीले गले वाला मार्टन, एशियाई काला भालू पाए जाते हैं। कंचनजंघा राष्ट्रीय उद्यान में संकटासन्न हिमालयी गोरल, हिमालयी सीरो, लुप्तप्राय जंगली कुत्ता या ढोल, तथा असुरक्षित मेघछीट तेंदुआ पाए जाते हैं। अल्पाइन वन और झाड़ियाँ 4500 मीटर तक फैली हुई हैं। इस क्षेत्र के प्रमुख जंगली स्तनधारियों में लुप्तप्राय अल्पाइन कस्तूरी मृग, संकटग्रस्त हिमालयी तहर, और नीली भेड़ या भारल शामिल हैं। ट्रांस-हिमालयन पारि-क्षेत्र 4,500 मीटर से 5,500 मीटर तक फैला हुआ है, जिसमें विशिष्ट ठंडी रेगिस्तानी वनस्पति है, जो विशेष रूप से सिक्किम के उत्तर तक सीमित है। इस इको-क्षेत्र में संकटग्रस्त तिब्बती अर्गाली, तिब्बती गजेल, लुप्तप्राय हिम तेंदुआ, यूरेशियन लिंक्स, संकटग्रस्त पलास बिल्ली, तिब्बती लोमड़ी और तिब्बती भेड़िया पाए जाते हैं।

असम

असम इंडो-चीनी प्रजातियों जिसमें प्राइमेट्स शामिल है की सबसे पश्चिमी सीमा बनाता है, और प्रायद्वीपीय स्तनधारी जीवों की सबसे पूर्वी सीमा बनाता है। चिकने पंजे वाला ऊदबिलाव, चित्तीदार हिरण, दलदली हिरण, स्टोन मार्टन, हिस्पिड खरगोश, भारतीय एक सींग वाले गैंडे, पिग्मी हॉग आदि सहित कई भारतीय प्रजातियों का वितरण विस्तार असम पहुंचकर समाप्त हो जाती है। यह क्षेत्र विभिन्न इंडो-चीनी जानवरों का भरण-पोषण करता है। क्लाउडेड तेंदुआ, मार्बल बिल्ली, सुनहरी बिल्ली, चित्तीदार लिंसांग, बड़े भारतीय सिवेट, बिंटुरॉन्ग, केकड़ा खाने वाले नेवला, फेरेट बेजर, हॉग बेजर, होरी बांस चूहा, बे बांस चूहा आदि जैसी प्रजातियों का उल्लेख किया जा सकता है। असम उत्तर पूर्वी क्षेत्र में पाई जाने वाली सभी प्राइमेट प्रजातियों का घर है। इसके अलावा, प्रायद्वीपीय भारत के कई रेलिक्ट स्तनधारी जीव, विशेष रूप से पश्चिमी घाट में, असम और पूर्वोत्तर क्षेत्रों के साथ घनिष्ठ संबंध रखते हैं। इसलिए, असम स्तनधारी जीवों के विचलन की भारत की विकासवादी प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। असम की स्तनधारी विविधता का प्रतिनिधित्व 160 प्रजातियां करती है जो इस क्षेत्र में व्यापक रूप से वितरित हैं। लेकिन हाल ही में कुछ प्रजातियां, जैसे एक सींग वाले गैंडे, जंगली पानी की भैंस, पिग्मी हॉग, दलदली हिरण, सुनहरा लंगूर और हूलॉक गिब्बन, का वितरण अलग-अलग हिस्सों और संरक्षित क्षेत्रों तक सीमित है।

मेघालय

मेघालय उत्तर पूर्व भारतीय जैव-भौगोलिक क्षेत्र (असम, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम और त्रिपुरा के साथ) में स्थित है, जो एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है क्योंकि यह भारतीय, भारतीय-मलय, इंडो-चीनी जैव-भौगोलिक क्षेत्रों के बीच एक संक्रमण क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। मेघालय भारत-बर्मा जैव विविधता हॉटस्पॉट के एक अभिन्न अंग का भी प्रतिनिधित्व करता है, जो भारत में 4 जैव-विविधता हॉटस्पॉट, और दुनिया में 34 में से एक है। मेघालय राज्य की उच्च प्रजाति विविधता और उच्च स्तर की स्थानिकता के कारण जैव विविधता संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में पहचान की गई है। इसने देश भर के वन्यजीव उत्साही और शोधकर्ताओं का ध्यान आकर्षित किया है। दुर्लभ और अत्यधिक लुप्तप्राय क्लाउडेड तेंदुआ राज्य पशु है। यहां पाए जाने वाले अन्य मांसाहारी तेंदुए, तेंदुआ बिल्ली, जंगल बिल्ली, गोल्डन कैट, मार्बल कैट, ढोल या भारतीय जंगली कुत्ते और भारतीय भेड़िया हैं। हाथी, गौर, सांभर, सीरो और बार्किंग हिरण आमतौर पर पाए जाने वाले शाकाहारी वन्यजीव हैं। सर्वाहारी में सियार, बंगाल लोमड़ी, सुस्त भालू, हिमालयी काला भालू, बड़े भारतीय सिवेट, पीले गले वाले मार्टन, नेवला, हॉग बेजर आदि शामिल हैं। वानरों में, हूलॉक गिब्बन, भारत में पाया जाने वाला एकमात्र एप और कैप्ड लंगूर, दोनों विश्व स्तर पर लुप्तप्राय प्रजातियां, भी राज्य में पाई जाती हैं। राज्य में पाए जाने वाले अन्य प्राइमेट स्लो लोरिस, पिग टेल्ड मकाक, स्टंप टेल्ड मकाक और रीसस मकाक हैं।

मणिपुर

मणिपुर का शाब्दिक अर्थ है ''रत्नजड़ित भूमि'', मणिपुर प्राकृतिक सुंदरता और भव्यता में समृद्ध है। मणिपुर के भौगोलिक क्षेत्र का 67 प्रतिशत वनों से आच्छादित है। पहाड़ी श्रृंखलाओं की ऊंचाई के आधार पर, जलवायु की स्थिति उष्णकटिबंधीय से उप-अल्पाइन तक भिन्न-भिन्न है। आर्द्र जंगल और देवदार के जंगल समद्र तल से 900-2700 मीटर के बीच पाए जाते हैं और दुर्लभ और स्थानिक पौधों और पशु जीवन का भरण-पोषण करते हैं। यह स्थान संगाई (भौंह-सींग वाले हिरण की एक दुर्लभ प्रजाति) का घर है। मणिपुर राज्य जैविक विविधता का भंडार है जिसमें मुख्य रूप से ढोल, क्लाउडेड तेंदुआ, फिशिंग कैट, एशियाई छोटे पंजे वाला ऊदबिलाव, स्मूथ-कोटेड ऊदबिलाव, सन बियर, बिंटुरॉन्ग, चाइनीज पैंगोलिन, स्टंप-टेल्ड मैकाक, नॉर्दर्न पिग-टेल्ड मैकाक, हूलॉक गिब्बन और बंगाल स्लो लोरिस जैसे संकटग्रस्त स्तनधारी हैं। एक स्थानिक प्रजाति यानी मणिपुर बुश चूहा, का नाम राज्य के नाम पर ही रखा गया है। मणिपुर की तरह जैविक विविधता से समृद्ध पर्यावरण स्थायी आर्थिक गतिविधि के लिए व्यापक विकल्प प्रदान करता है।

मिजोरम

मिजोरम, पूर्वोत्तर भारत का एक राज्य, विविध वन्यजीवों के लिए एक अभयारण्य है। लुप्तप्राय प्रजातियों में ढोल, भारतीय हॉग हिरण, फेयर के पत्ती बंदर, हूलॉक गिब्बन और बंगाल स्लो लोरिस यहाँ पाए जाते हैं। मुख्य रूप से कृषि, इमारती लकड़ी की कटाई और बुनियादी ढांचे के विकास के लिए वनों की कटाई के कारण ये जानवर पर्यावास के नुकसान से गंभीर दबाव में हैं। गंभीर रूप से लुप्तप्राय चीनी पैंगोलिन विशेष रूप से अपने शल्क के लिए जो पारंपरिक चिकित्सा में अत्यधिक मूल्यवान हैं, अवैध शिकार के कारण असुरक्षित है। राज्य कई असुरक्षित प्रजातियों की मेजबानी भी करता

है, जिनमें क्लाउडेड तेंदुआ, तेंदुआ, मछली पकड़ने वाली बिल्ली, एशियाई छोटे-पंजे वाले ऊदबिलाव, ग्रेटर हॉग बेजर, स्मूथ-कोटेड ऊदबिलाव, सूर्य भालू, सुस्त भालू, एशियाई काले भालू, बिंटुरॉन्ग, गौर, मुख्यभूमि सीरो, चीनी गोरल, सांभर हिरण, स्टंप-टेल्ड मकाक, उत्तरी सुअर-पूंछ वाले मकाक और कैप्ड लंगूर शामिल हैं। इन प्रजातियों को निवास स्थान के विखंडन, मानव-वन्यजीव संघर्ष और अवैध शिकार से खतरों का सामना करना पड़ता है। बढ़ती मानव आबादी और कृषि गतिविधियों का विस्तार इन खतरों को बढ़ाता है, जिससे उनके पर्यावास में गिरावट और विखंडन होता है।

त्रिपुरा

त्रिपुरा में विभिन्न समूहों से संबंधित जंगली जानवरों की व्यापक विविधता पाई जाती है। स्तनधारी जीवों की समृद्धि को इसकी अनूठी जैव-भौगोलिक स्थिति को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। साहित्य से पता चलता है कि त्रिपुरा में हाथी, बाघ, तेंदुए, लंगूर और बंदरों की बड़ी आबादी (भारत में गैर-मानव प्राइमेट की कुल 15 प्रजातियों में से, 7 थी। इनमें कुछ दुर्लभ, स्थानिक और लुप्तप्राय प्रजातियां भी शामिल हैं जैसे हूलॉक गिब्बन, स्लो लोरिस, कैप्ड लंगूर, फेयर का लंगूर, स्टंप-टेल्ड मकाक और पिग-टेल्ड मकाक। वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 की अनुसूची-1 में अन्य संकटापन्न और संकटापन्न स्तनधारी प्रजातियां हाथी, सुस्त भालू, भारतीय भेड़िया, बिन्तुरोंग, तेंदुआ, मार्बल बिल्ली, तेंदुआ बिल्ली, चीनी पैंगोलिन और सीरो आदि हैं।

नागालैंड

नागालैंड में, 10 वें विशिष्ट जैव-भौगोलिक क्षेत्र में स्थित एक राज्य और विश्व स्तर पर पहचाने गए 18 मेगा हॉट स्पॉट में से एक हैं। यहां इंटांकी नेशनल पार्क और फाकिम वन्यजीव अभयारण्य जैसे प्रमुख वन्यजीव आवास विभिन्न प्रकार की संकटग्रस्त स्तनपायी प्रजातियों को आश्रय देते हैं। इनमें क्लाउडेड तेंदुआ, सुस्त भालू, एशियाई काला भालू और गौर शामिल हैं, जो संरक्षण चुनौतियों का सामना करने वाले विभिन्न स्तनधारियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। नागालैंड के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय सदाबहार वनों की अनूठी जैव विविधता और इसके चैड़ी पत्ती वाले नम समशीतोष्ण वन इन प्रजातियों के लिए महत्वपूर्ण आवास के रूप में काम करते हैं। ढोल, मछली पकड़ने वाली बिल्ली, एशियाई छोटे-पंजे वाले ऊदबिलाव और मुख्यभूमि सीरो जैसे लुप्तप्राय और कमजोर स्तनधारियों की उपस्थिति निवास स्थान के नुकसान और विखंडन जैसे खतरों को कम करने के लिए संरक्षण प्रयासों की तत्काल आवश्यकता पर जोर देती है । नागालैंड में भारतीय, इंडो-मलय और इंडो-चीनी जैव-भौगोलिक क्षेत्रों का संक्रमण क्षेत्र राज्य के पारिस्थितिक महत्व और इसके समृद्ध स्तनधारी जीवों की सुरक्षा के लिए व्यापक संरक्षण रणनीतियों की अनिवार्यता पर प्रकाश डालता है।

उत्तरी पश्चिम बंगाल

उत्तरी पश्चिम बंगाल, जलपाईगुड़ी, दार्जिलिंग, दिनाजपुर और कूच बिहार जिलों को शामिल करते हुए, हिमालय की तलहटी में बसा हुआ है, जो कई बड़े जानवरों के लिए एक विविध आवास प्रदान करता है। यह क्षेत्र कई संकटग्रस्त स्तनपायी प्रजातियों के लिए एक आश्रय स्थल के रूप में कार्य करता है, जिसमें प्रतिष्ठित ग्रेट इंडियन एक सींग वाला गैंडा भी शामिल है, जो क्षेत्र की पारिस्थितिक समृद्धि का प्रतीक है। हाथियों के झुंडों द्वारा भोजन के

पूर्वोत्तर भारत में संकटग्रस्त स्तनधारियों की छवियाँ। (1) कैप्ड लंगूर (2) हॉग डियर (3) एक सींग वाला गैंडा (4) बंगाल टाइगर (5) बारहसिंगा (6) एशियाई हाथी (7) गौर (8) जंगली भैंसा (9) लाल पांडा

मैदान के रूप में इस क्षेत्र का उपयोग करना एक महत्वपूर्ण वन्यजीव आवास के रूप में इसके महत्व को रेखांकित करती है। इसके अतिरिक्त, उत्तरी पश्चिम बंगाल में बाघों और तेंदुओं जैसे दुर्जेय शिकारियों के साथ-साथ हॉग हिरण, चित्तीदार हिरण, भौंकने वाले हिरण और सांभर जैसी विभिन्न हिरण प्रजातियों का निवास है, जो क्षेत्र की पारिस्थितिक विविधता को जोड़ते हैं। इसके अलावा, अभयारण्य दुर्लभ और स्थानिक प्रजातियों जैसे रोमिल खरगोश और हॉग बेजर को आश्रय देता है, जबकि सुस्त भालू और लाल पांडा जैसे शर्मीले जीवों के लिए एक निवास स्थान प्रदान करता है। इसके पारिस्थितिक महत्व के बावजूद, उत्तरी पश्चिम बंगाल में कई स्तनपायी प्रजातियों को खतरों का सामना करना पड़ता है, जिनमें से कई लुप्तप्राय, कमजोर, या गंभीर रूप से लुप्तप्राय के रूप में आईयूसीएन रेड लिस्ट में सूचीबद्ध हैं, जिनमें बंगाल टाइगर, क्लाउडेड तेंदुआ, मछली पकड़ने वाली बिल्ली, एशियाई हाथी और भारतीय गैंडे शामिल हैं, जो क्षेत्र की अद्वितीय जैव विविधता की सुरक्षा के लिए लक्षित संरक्षण प्रयासों की तत्काल आवश्यकता पर बल देते हैं।

स्तनधारी जैव विविधता के लिये खतराः

पूर्वोत्तर भारत के स्तनधारियों को कई खतरों का सामना करना पड़ता है, जिससे उनका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। वनों की कटाई, कृषि विस्तार, लॉगिंग और बुनियादी ढांचे के विकास से पर्यावास विनाश एक प्राथमिक चिंता का विषय है, जिससे खंडित पर्यावास बनते हैं जो आबादी को अलग करते हैं और आनुवंशिक विविधता को कम करते हैं। अवैध वन्यजीव व्यापार और मानव-वन्यजीव संघर्षों के कारण अवैध शिकार, स्थिति को और खराब कर देते हैं। विशिष्ट खतरों में कृषि और बस्तियों के लिए अनियोजित निकासी, झूम खेती, लॉगिंग और खनन शामिल है जो लाल पांडा और विभिन्न प्राइमेट्स जैसी प्रजातियों को प्रभावित करता है। भोजन और पारंपरिक प्रथाओं के लिए शिकार ने प्रजातियों को और खतरे में डाल दिया, आदिवासी समूह नियमित रूप से प्राइमेट्स और अन्य स्तनधारियों का शिकार करते हैं। घरेलू पशुधन द्वारा प्रेषित मुंहपका-खुरपका रोग और रिंडरपेस्ट जैसे रोग का प्रकोप, अतिरिक्त जोखिम पैदा करता है। विद्रोह और मानव-वन्यजीव संघर्ष, विशेष रूप से एशियाई काले भालू और सूर्य भालू से जुड़ी हुई, भी समस्या में योगदान करते हैं। खंडित पर्यावास और संसाधन प्रतिस्पर्धा संघर्ष और वन्यजीवों की आबादी में गिरावट का कारण बनती है। अन्य पर्यावरणीय मुद्दे, जैसे चाय बागानों में कीटनाशकों से आकस्मिक विषाक्तता, पेपर मिलों के लिए बांस की कटाई, और तेल और कोयला खनन, प्रदूषण और पर्यावास की गड़बड़ी का कारण बनते हैं। इन गतिविधियों के कारण हूलॉक गिब्बन और कैप्ड लंगूर जैसी प्रजातियों को गंभीर अस्तित्व के खतरों का सामना करना पड़ा है। जागरूकता की कमी और अपर्याप्त सुरक्षा रणनीतियों से संरक्षण के प्रयास बाधित होते हैं, इसलिये पूर्वोत्तर भारत की समृद्ध जैव विविधता को संरक्षित करने के लिये इन मानवजनित संकटों का समाधान करना आवश्यक है।

निष्कर्ष और सिफारिशः

पूर्वोत्तर भारत के संकटग्रस्त स्तनधारियों के सामने आने वाली संरक्षण चुनौतियों को संबोधित करने के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो सतत विकास के साथ संरक्षण को संतुलित करता है। प्रमुख सिफारिशों में एक व्यापक जैव विविधता डेटाबेस विकसित करने के लिए प्रजातियों की स्थिति, जनसंख्या और पारिस्थितिकी पर व्यवस्थित अध्ययन करना और संरक्षण प्रयासों को प्राथमिकता देने के लिए इन क्षेत्रों का मानचित्रण करना शामिल है। पर्यावास के क्षरण और विखंडन के लिए अग्रणी कारकों की पहचान करना और उन्हें कम करना, जैसे कि अवैध कटाई, खनन, अतिक्रमण और मवेशी चराई, महत्वपूर्ण है। अवैध शिकार का मुकाबला सख्त प्रवर्तन, खुफिया नेटवर्क और वन्यजीव उत्पादों के लिए बाजार विकल्प प्रदान किया जाना चाहिए। संरक्षित या गैर-संरक्षित, सभी क्षेत्रों में वन्यजीव कानूनों का सख्त पालन आवश्यक है। विनियमित पशुधन चराई, वन संसाधन संग्रह, व्यवहार्य पुनर्विन्यास, और पर्यावास गलियारों के माध्यम से संरक्षित क्षेत्रों का जोड़, आवश्यक क्रियाएं हैं। जागरूकता अभियान और कड़ी सजा के माध्यम से जानवरों के अवैध व्यापार और अंधविश्वासी उपयोग को खत्म करना महत्वपूर्ण है। मानव-वन्यजीव संघर्षों को कम करने के प्रयासों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। संरक्षण में प्राथमिक हितधारकों के रूप में स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाना और इकोटूरिज्म जैसी वैकल्पिक आजीविका के माध्यम से उनकी भागीदारी को प्रोत्साहित करना, वन संसाधनों पर निर्भरता को कम कर सकता है। अवैध वन्यजीव व्यापार से निपटने और सीमा पार संरक्षण के मुद्दों को संबोधित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और वकालत भी आवश्यक है। पूर्वोत्तर भारत के स्तनधारियों का संरक्षण एक नैतिक अनिवार्यता है और पारिस्थितिकी तंत्र के लचीलेपन को बनाए रखने और भविष्य की पीढ़ियों की भलाई को सुरक्षित करने के लिए महत्वपूर्ण है। जैव विविधता के नुकसान के मूल कारणों को संबोधित करके, मनुष्यों और वन्यजीवों के बीच सह-अस्तित्व को बढ़ावा देने और समावेशी संरक्षण प्रथाओं को बढ़ावा देने से, ये प्रतिष्ठित प्रजातियां फलती-फूलती रह सकती हैं। पूर्वोत्तर भारत की समृद्ध स्तनधारी विरासत को सुनिश्चित करने के लिए ठोस कार्रवाई और साझा जिम्मेदारी आवश्यक है, एक स्थायी भविष्य का निर्माण करना जहां वन्यजीव और मानव समुदाय सामंजस्यपूर्ण रूप से सह-अस्तित्व में रहते हों।

फाइटोरिमेडिएशन: डंपिंग ज़ोन (कचरा संग्रहण क्षेत्र) के लिए एक स्थायी समाधान

प्रियांशु बिशन, हरिप्रिया, अंशु कुमारी, डा०एस.सी.आर्य
गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, कोसी कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

फाइटोरिमेडिएशन एक प्रक्रिया है, जो पौधों का उपयोग करके मिट्टी, पानी और हवा से प्रदूषकों को साफ करने के लिए प्रयुक्त होती है।यह प्रक्रिया प्रदूषित क्षेत्र, कूड़े कचरे के डंपिंग ज़ोन (कचरा संग्रहण क्षेत्र) एवं हमारे आसपास की स्वच्छता हेतु एक आशाजनक तकनीक के रूप में उभरी है। प्रदूषित क्षेत्र, डंपिंग ज़ोन तथा अनुचित कचरा निपटान के तरीकेपर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए अत्यंत जोखिम पैदा करते हैं। इस समस्या के समाधान हेतु कई प्रयास किये जा रहे हैं. इन प्रयासों के अंतर्गत 'फाइटोरिमेडिएशन' एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया के रूप में प्रयोग की जा सकती है. यह लेख 'फाइटोरिमेडिएशन' प्रक्रिया, डंपिंग ज़ोन (कचरा संग्रहण क्षेत्र) में इसके अनुप्रयोग तथा कचरा संग्रहण से होने प्रदूषण से सम्बंधित मौजूदा चुनौतियों और भविष्य में इसके लिए आवश्यक अनुसंधान एवं कार्यान्वयन की आवश्यकता के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

कुछ विशेष प्रकार के पौधों में प्रदूषकों को अवशोषित, विघटित और स्थिर करने की प्राकृतिक क्षमता होती है. पौधों की इन्हीं प्राकृतिक क्षमताओं का उपयोग करके डंपिंग ज़ोन (कचरा संग्रहण क्षेत्र) तथा अन्य प्रदूषित स्थलों में प्रदूषकों को अवशोषित, विघटित और स्थिर करके 'फाइटोरिमेडिएशन'प्रक्रिया, स्वच्छ पर्यावरण हेतु एक किफायती और पर्यावरण अनुकूल दृष्टिकोण प्रदान करती है जो सतत पर्यावरण प्रबंधन में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

डंपिंग ज़ोन, जो अक्सर शहरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा कचरे के अनुचित एकत्रीकरण एवं निष्कासन का परिणाम होते हैं, वैश्विक स्तर पर एक गंभीर पर्यावरणीय चिंता का विषय बन गया है। डंपिंग ज़ोन में भारी धातुओं, जैविक यौगिकों और अन्य विषाक्त पदार्थों के अलावा विभिन्न प्रदूषकों की उपस्थिति होती है जो वर्षों तक पर्यावरण में बनी रहती है जिससे उस क्षेत्र की जैव विविधता, मृदा तथा सम्पूर्ण पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है।

चित्र.2: विभिन्न भाग जहां फाइटोरेमडिएशन प्रक्रियाएं होती हैं

वर्तमान में प्रयोग में लायी जा रही पारंपरिक सफाई विधियाँ जैसे खुदाई, गड्ढा बनाना, कचरे का दहन इत्यादि अक्सर महंगी ऊर्जाकी खपत करती हैं जो भविष्य में पर्यावरणीय व्यवधान का कारण बन सकती हैं। 'फाइटोरिमेडिएशन'प्रक्रिया पौधों की विशिष्ठ प्राकृतिक क्षमताओं का उपयोग करके मिट्टी और पानी में से प्रदूषकों की मात्रा कम कर देती है और उन्हें स्थिर करके कचरा निपटारण तथा प्रबंधन हेतु एक स्थायी विकल्प प्रदान करती है। यह लेख 'फाइटोरिमेडिएशन' के सिद्धांतों, डंपिंग ज़ोनमें इसके अनुप्रयोग, तथा कचरा संग्रहण से होने प्रदूषण से सम्बंधित मौजूदा चुनौतियों और भविष्य में इसके लिए आवश्यक अनुसंधान एवं कार्यान्वयन की आवश्यकता के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

फाइटोरिमेडिएशन को समझना

'फाइटोरिमेडिएशन' में पर्यावरण प्रदूषण को कम करने के लिए कुछ विशेष प्रजातियों के पौधों का उपयोग किया जाता है जिनके द्वारा विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे 'फाइटोएक्स्ट्रेक्शन', 'राइजॉफिल्ट्रेशन', 'फाइटोस्टेबिलाइज़ेशन' और 'फाइटोडिग्रेडेशन' के माध्यम से प्रदूषकों को अवशोषित, मेटाबोलाइज या स्थिर किया जाता है। ये प्रक्रियाएँ पौधों के प्रदूषकों को अपने ऊतकों में संचित करने या राइजोस्पेयर में सूक्ष्मजीव विघटन को सुविधाजनक बनाने की क्षमतारखती हैं, जिससे पर्यावरण में प्रदूषकों की सांद्रता और विषाक्तता प्रभावी ढंग से कम हो जाती है।

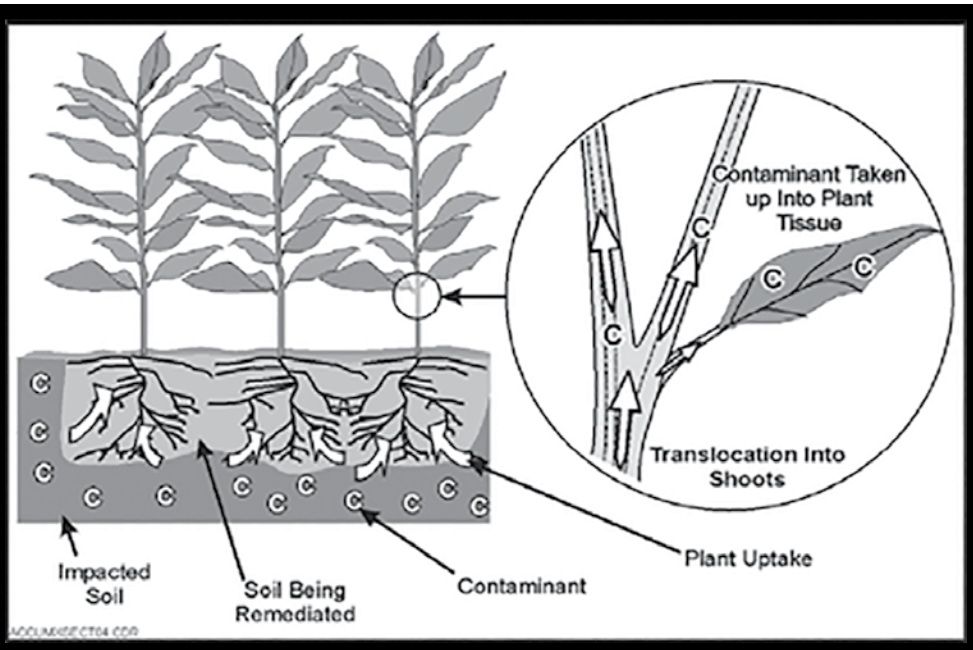

चित्र-2: विभिन्न भाग जहां फाइटोरेमडिएशन प्रक्रियाएं होती हैं

डंपिंग ज़ोनमें 'फाइटोरिमेडिएशन', प्रक्रिया, विशिष्ट प्रदूषकों को लक्षित करकेपारिस्थितिक संतुलन को बहाल करने हेतु एक स्थायी समाधान प्रदान करती है। इसमें सम्बंधित किये गए अनुसंधान के अनुसार, इस प्रक्रिया की प्रभावशीलता एवं सफलताविभिन्न पौधों कीप्रजातियों के चयन,वातावरण एवं आवास के अनुसार सफाई के प्रयास तथा अन्य कारकों जैसे कि मिट्टी की स्थिति और प्रदूषकों के प्रकार पर निर्भर करती है.

फाइटोएक्स्ट्रेक्शन, एक प्रक्रिया है जिसमें पौधों के ऊतकों में प्रदूषकों का अवशोषण और संचयन शामिल है जिनका डंपिंग ज़ोन में भारी धातु प्रदूषण के लिए व्यापक रूप से अध्ययन किया गया है। विलो (*Salix spp.*), पॉपलर (*Populus spp.*), और भारतीय सरसों (*Brassica juncea*) जैसे पौधों ने अपने व्यापक जड़ तंत्र और धातु अवशोषण तंत्र के माध्यम से कैडमियम (Cd), सीसा (Pb), और आर्सेनिक (Ar) जैसी धातुओं को प्रदूषित मिट्टी से हटाने में सक्षमता दिखाई है।

राइजॉफिल्ट्रेशन, एक प्रक्रिया है जो पानी से प्रदूषकों को फ़िल्टर करने के लिए पौधों की जड़ों का उपयोग करती है जोकि डंपिंग ज़ोन में लीचिंग और भूजल की सफाई के लिए उपयोग में लायी जाती है। जलकुंभी (*Eichhornia crassipes*) और कैटटेल्स (Typha spp.) जैसी प्रजातियाँ पोषक तत्व(जो भारी मात्रा मैं उपस्थित हों), भारी धातुओं और जैविक यौगिकों जैसे प्रदूषकों को जल निकायों से हटाने में प्रभावी रही हैं जिससे आस-पास के क्षेत्रों में प्रदूषण के प्रसार को कम किया जा सका है।

फाइटोस्टेबिलाइज़ेशन और फाइटोडिग्रेडेशनप्रक्रियाएँ मिट्टी में प्रदूषकों को स्थिर या विघटित करने की क्षमता रखती हैं तथा प्रदूषकों की उपलब्धता और इसके नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभाव को कम करती हैं। गहरी जड़ प्रणाली और उच्च बायोमास उत्पादन वाले पौधे जैसे घास और फलियाँ, मिट्टी को स्थिर करने और प्रदूषकों के भूजल में प्रवेश को रोकने में मदद कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त विशिष्ट पौध-जीवाणु संघों के उपयोग द्वारा विघटन प्रक्रियाओं को गतिशील बनाया जा सकता है जिससे जैविक प्रदूषकों की सफाई में तेजी आ सकती है।

चुनौतियाँ एवं सीमाएँ

फाइटोरिमेडिएशन के संभावित लाभों के बावजूद इसे अपनाने में कई चुनौतियाँ और सीमाएँ हैं, जो डंपिंग ज़ोन में इसके व्यापक उपयोग को बाधित

करती हैं। धीमी सफाई दरें, उच्च प्रदूषक सांद्रता के प्रति सीमित पौध सहनशीलता और प्रदूषकों की स्थल-विशिष्ट परिवर्तनशीलता जैसी चुनौतियाँ फाइटोरिमेडिएशन प्रक्रिया की मापनीयता और दक्षता को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त उपयुक्त पौध प्रजातियों का चयन, पौधे की वृद्धि के लिए पर्यावरणीय अनुकूलनतथा इससे जुड़े हुए विभिन्न पर्यावरणीय कारकों, प्रदूषक विशेषताओं और नियामक बाधाओं पर सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। फाइटोरिमेडिएशन, स्थलों की दीर्घकालिक निगरानी और रखरखाव, सफाई प्रयासों की प्रभावशीलता और स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है, जिससे समग्र लागत और कार्यान्वयन की जटिलता बढ़ जाती है।

फाइटोरिमेडिएशन: अनुसंधान में भविष्य की प्रगति

मौजूदा चुनौतियों को हल करने और डंपिंग ज़ोन में पौधों से सफाई के तरीके को बेहतर बनाने के लिए आगे के शोध में कई खास बातों पर ध्यान देना जरूरी है। अलग-अलग तरह के प्रदूषण और पर्यावरण की परिस्थितियों के अनुसार नई योजनाएं बनानी होंगी।

1- पौधों की सहनशीलता और प्रदूषण सोखने की क्षमता बढ़ाने के लिए जेनेटिक इंजीनियरिंग और सूक्ष्मजीवों के इस्तेमाल पर कार्य किया जा सकता है।

2- जटिल प्रदूषकों को कम करने के लिए नए उपाय विकसित किए जा सकते हैं तथा पौधों व जीवाणुओं की परस्पर क्रियाओं का विश्लेषण किया जा सकता है।

3- लैब मेंकिए जा रहे शोधों को प्रायोगिक स्तर पर इस्तेमाल करनेऔर विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों को साथ जोड़ने का प्रयास किया जा सकता है

4- इसके साथ ही यह भी देखा जा सकता है कि इन प्रोजेक्ट्स का पर्यावरण और समाज पर लंबे समय में क्या असर होगा।

5- पौधों की प्रदूषण हटाने की क्षमता को अच्छी तरह समझने और नए तरीके अपनाने से, हम इस हरित तकनीक का उपयोग डंपिंग जोन को साफ करने और भविष्य के लिए स्वस्थ पर्यावरण बनाने में कर सकते हैं।

निष्कर्ष

फाइटोरिमेडिएशनप्रक्रिया, विषाक्त पदार्थों से प्रदूषित डंपिंग ज़ोन की सफाई के लिए एक स्थायी समाधान के रूप में बड़ी संभावनाएँ रखती है तथा यह पौधों की विशिष्ट प्राकृतिक क्षमताओं का उपयोग कर प्रदूषकों को अवशोषित, विघटित और स्थिर करके, पारंपरिक सफाई विधियों के लिए एक किफायती और पर्यावरण के अनुकूल विकल्प प्रदान करती है। इसके व्यापक कार्यान्वयन हेतु तकनीकी, तार्किक और नियामक चुनौतियों को दूर करना महत्वपूर्ण है ताकि फाइटोरिमेडिएशन की पूरी क्षमता का उपयोग पर्यावरण प्रदूषण का समाधान करने में किया जा सके। सतत अनुसंधान प्रयासों और अंतःविषय सहयोग के साथ फाइटोरिमेडिएशन, स्थायी पर्यावरण प्रबंधन के एक मुख्य आधार के रूप में उभर सकती है जो हम सभी के लिए एक स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण बनाने में योगदान दे सकती है। संवाद और ज्ञान विनिमय को बढ़ावा देकर हम फाइटोरिमेडिएशन को एक मुख्यधारा सफाई प्रौद्योगिकी के रूप में अपनाने में तेजी ला सकते हैं तथा एक अधिक सतत और लचीले भविष्य की ओर रास्ता बना सकते हैं।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा वर्ष 2023 में आयोजित कार्यशालाएं

सूक्ष्म परिचय

महेश चन्द्र सती
गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, कोसी कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की वर्ष 2023 की पहली तिमाही कार्यशाला का आयोजन दिनांक 06 फरवरी 2023 को समिति के उपाध्यक्ष ई. एम.एस. लोधी द्वारा किया गया। ई. एम.एस. लोधी ने संस्थान मुख्यालय तथा इसकी 05 क्षेत्रीय केंद्रों (ईटानगर, श्रीनगर-गढ़वाल, सिक्किम, हिमाचल प्रदेश तथा लद्दाख) को राजभाषा हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग तथा हिन्दी भाषा के कार्य को बढ़ावा देने के क्रम में प्राप्त ईमेल की पावती भेजने हेतु हिन्दी भाषा में स्व-उत्तर (ऑटो-रिप्लाई) को विभिन्न ईमेल प्लेटफार्मो (जीमेल,याहू,एनआईसी,रेडिफ,हॉटमेल इत्यादि) में सक्रिय (एक्टिव) करने की प्रक्रिया को बिन्दुवार पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन के माध्यम से प्रस्तुत किया तथा शंकाओं का भी समाधान किया।

दूसरी तिमाही कार्यशाला का आयोजन डॉ० सुबोध ऐरी, सदस्य रा.का. समिति द्वारा दिनांक 11 जून 2023 को ताकुला क्षेत्र में औषधीय पौधों की खेती विषय पर किया गया। डॉ० ऐरी ने इस कार्यशाला के माध्यम से ग्रामीणों को औषधीय पौधों की खेती और उनके महत्व के बारे में बताया। उन्होंने खेती हेतु जमीन को तैयार करने की विधि, पैदावार के उचित समय और पैदावार वृद्धि हेतु विस्तारपूर्वक बताया। इस कार्यक्रम के माध्यम से उन्होंने औषधीय पौधों के उत्पादन और उनसे आमदनी बढ़ाने की विधि तथा मोटे अनाजों का उत्पादन, महत्व और इनके स्वास्थ्यवर्धक गुणों से भी अवगत कराया। अन्त में किसानों को खेती में आने वाली समस्याओं के समाधान हेतु अपने सुझाव भी साझा किये।

तीसरी तिमाही हिन्दी कार्यशाला का आयोजन डा. आशीष पाण्डेय, सदस्य रा.का. समिति द्वारा दिनांक 14 सितम्बर 2023 को किया गया। संस्थान के सूर्यकुन्ज में आयोजित इस कार्यशाला में जवाहर नवोदय विद्यालय, ताड़ीखेत और केंद्रीय विद्यालय, रानीखेत के छात्रों और शिक्षकों को हिन्दी में कार्य करने एवं सामान्य बोलचाल में शुद्ध हिन्दी के प्रयोग के बारे में बताया गया। उन्होंने सूर्यकुन्ज में पायी जाने वाली विभिन्न पादप प्रजातियों और उनके उपयोग के बारे में भी विस्तृत जानकारी साझा की। इस कार्यशाला के माध्यम से विद्यार्थियों में पर्यावरण और वृक्षारोपण के प्रति रूचि जागृत की गयी और उन्हें इनके महत्त्व से भी अवगत कराया गया। इस कार्यशाला में लगभग 70 प्रतिभगियों ने प्रतिभाग किया।

चौथी कार्यशाला का आयोजन दिनांक 29 दिसम्बर 2023 को महेश चन्द्र सती, सदस्य रा.का. समिति द्वारा राजभाषा हिन्दी और हम विषय पर किया गया। श्री सती ने राजभाषा अधिनियम 1963 (यथा संशोधित 1967) की धारा 3(3) के अन्तर्गत आने वाले दस्तावेजों, राजभाषा हिन्दी की उत्पत्ति और स्थान, विश्व हिन्दी दिवस को मनाए जाने का कारण, राजभाषा नियम, राजभाषा आयोग और पुरस्कार योजनाएं, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली, नराकास व राजभाषा विभाग में रजिस्ट्रेशन, विभिन्न क्षेत्रों के बीच पत्राचार, हिन्दी वर्तनी, कार्यालयी हिन्दी, कार्यालयों में उपयोग होने वाले विभिन्न पत्रों, कार्यालय आदेश, परिपत्र, टिप्पणी और कम्प्यूटर पर यूनिकोड का प्रयोग आदि की विस्तृत जानकारी दी। इस कार्यशाला में लगभग 40 अधिकारियों और कर्मचारियों ने प्रतिभाग किया।

राजभाषा हिन्दी पखवाड़ा के अन्तगत पुरस्कृत कविताऐं

प्रथम पुरस्कार

निर्मल कायाकल्प

चलो साथियों मिलकर हम सब, ऐसा एक संकल्प करें।
मलिन हो चुकी वसुंधरा का, निर्मल कायाकल्प करें।

मानव ने लालच में आकर, कैसा ये अपमान किया।
धरती मॉ की सुन्दरता को, कैसा निर्मम घाव दिया।

भौतिकता के भ्रम जाल से, ऐसा यूं परिणाम हुआ।
वन विहीन हो रही धरती मॉ, कैसा ये बर्ताव किया।

असहाय हो चुकी पावन धरा ने, ऐसा फिर व्यवहार किया।
मानव के दुष्कृत्यों पर, आपदा रुपी सम प्रहार किया।

अब वृक्ष लगाकर देख-रेख कर, प्रकृति को उपहार करें।
घाव दिया था निर्मम जो पहले, मिलकर सब वो घाव भरें।

स्वच्छ, सुन्दर, सुहास धरा हो, ऐसा दृढ़ संकल्प करें।
म्लिन हो चुकी वसुन्धरा का, आओ कायाकल्प करें।

चलो साथियो मिलकर हम सब, ऐसा एक संकल्प करें।
मलिन हो चुकी वसुंधरा का, निर्मल कायाकल्प करें।

विन प्रकृति मानव जीवन की, परिकल्पना बेकार है।
स्वच्छ प्रकृति व स्वच्छ धरा से, मानव का संसार है।

वृक्ष हमारे जीवन साथी, प्रकृति के आधार है ये,
स्वच्छ रहें ये वन और उपवन, शुद्ध हवा संचार हैं ये।

ना काटे, ना ही कटने दें, वृक्षों का सम्मान करें।
सौ पुत्र समान वृक्ष धरा में, प्रतिक्षण इन का ध्यान धरें।

हरियाली से भरे धरा हो, ऐसा दृढ संकल्प करें।
मलिन हो चुकी वसुंधरा का, निर्मल कायाकल्प करें।

चलो साथियो मिलकर हम सब, ऐसा यह संकल्प करें।
मलिन हो चुकी वसुंधरा का, निर्मल कायाकल्प करें।

अंकित सिंह महरा
आई0ई0आर0पी0अनुभाग
गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थानए
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

द्वितीय पुरस्कार

बड़ा आसान लगता है

बांसों के झुरमुटों से घिरे खेतों में
माँ का तेजी से कुदालीचलाना
और
चुनना खरपतवार को
पिता का तेजी से दन्याल चलाना
खेत में जमीं ऊपरी पपड़ी उखाड़कर
बचाना अनाज को
बड़ा आसान लगता है।
दादी का तेजी से चकले पर हाथ चलाना
बेलन घुमाकर रोटियाँ बनाना
नरम-नरम गोल-गोल
निरा सपना सा लगता है
वैसे ही जैसे
सूरज का उगना चांद का छिपना
चांद के आने पर फिर सूरज का जाना
प्रभात का खिलना ऋतुओं का बदलना
बड़ा आसान लगता है
पर होता नहीं कुछ भी
जीवन के जंगल में
जब सदियों की लोक साधना और लोकज्ञान एकाकार
होता है तभी
माँ फुर्ती से चला पाती है कुदाली
पिता दन्याल
और दादी चकले पर बेलन
बिल्कुल ऐसे ही खिलता है- एक फूल
जब सदियों तलक धूप-पानी-पाला सहकर
पौंधे बचाकर रखते हैं-बीज
बादल किसान के पसीने से मिलकर
पानी बन जाते हैं
तब खिलता है एक फूल
लेकिन बड़ा आसान लगता है।
जब एक बीज खुद को गलाता है
तब फूटती हैं नन्हीं कोपलें
फिर उगता है पौंधा
जो दशकों के अनुशासन से बन पाता है पेड़
जिसे किसी सड़क भवन या विकास के नाम पर
चंद घंटों में काट दिया जाता है
जिसे कटता देखना बड़ा आसान लगता है।
आखिर क्यों
किसी मनचले की तीली का शिकार
हो जाता है अमेजन का जंगल
47000 वर्ग किलोमीटर में झुलस पड़ती है
प्रकृति
जल उठता है प्राणी जगत
मिट्टी के ढेलों के लालच में
इस की टीवी पर कवरेज देखना
बड़ा आसान लगता है
लेकिन आसान होता नहीं।
ग्लोबल वार्मिंग के शिकार हो रहे हैं ग्लेशियर
मछलियाँ मर रही हैं सागरों में
रिसते तेल से
प्लास्टिक खा कर मर रहे हैं जानवर
प्रदूषण से परत दर परत फट रही है ओजोन
मानवता आतंक के साए में जी रही है
खतरे में है मातृत्व
देर शाम ढले क्लबों में
मुस्कुरा कर इन मुद्दों पर बहस करना
बड़ा आसान लगता है
लेकिन
सच मानिए
जनाब आसान नहीं होता॥

डा0 प्रतीक्षा जोषी
राष्ट्रीय हिमालयी अध्ययन मिशन
गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थानए
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड।

तृतीय पुरस्कार

क्या चड्डी पहन के फूल खिलेगा ??

जंगल जंगल बात चली है पता चला है
चड्डी पहन के फूल खिला है फूल खिला है
आज अनायास ये पंक्तियाँ याद आयी
बचपन की सुहानी यादें साथ लाई
सोचा इन पंक्तियों पर ही आज कुछ बनाऊं
लिखूं एक कविता और आपको सुनाऊं
गुलजार की इन पंक्तियों में सादगी बहुत समर्थ है
कहने को सिर्फ पंक्तियाँ है, पर छिपा इसमें अर्थ है
ये पंक्तियाँ सुन याद आता है वो सुनहरा दौर
जब दूरदर्शन ही होता था सबका सिरमौर
एकटक देखा करते थे हम टीवी पर वो छोटा बच्चा
जो था तो बड़ा नटखट, पर था एकदम सच्चा
मेगली था जिसका नाम
नित नए करतब दिखाना होता था उसका काम
रुडयार्ड किपलिंग की चरित्र कल्पना
उनकी जंगल की कल्पना
सब कुछ था अद्भुत, निराला
रोचक और मतवाला
जिस जंगल की थी ये कहानी
जो याद थी बच्चों को बेजुबानी
करता था जहाँ मोगली अठखेलियाँ
और बूझती थी नित नयी पहेलियाँ
मात्र कल्पना भर नहीं थी वो हमारी धरोहर
जो था अपार संपदा, जल, जीव और जंतुओं का सरोवर
उस चित्रण का आधार था हमारे समृद्ध जंगल
हमारी विरासत, हमारी परंपरा और हमारा भूमंडल
उसी विरासत से की किपलिंग ने संरचना
और की जंगल बुक की रचना
उस जंगल का वर्णन करूँ तो कैसे करूँ
कहाँ से शुरू करूँ कहाँ पे ख़तम करूँ
कलकल करती नदियाँ और बहता पानी
वृक्ष, लता, बेलों का था हार, विलक्षण थे जिसमें प्राणी
जंगल, जिसमें बसते थे हमारे बघीरा, बालू और शेर खान
हाथी, अकेला, रक्षा, रामा और लीला थे जंगल की शान
वैभवशाली वृक्षों का विस्तार, विस्तारित प्रजातियाँ अपार
सूक्ष्म जीव से उच्च जीवों तक की थी भरमार
प्रकृति का अनूठा रूप
विशिष्ट और निराला स्वरुप
पारिस्थितिकीय स्थिरता एवं संतुलन की विशेषता
संगठित रचना क्रम और अनेकता में एकता
यही तो है एक आदर्श जंगल की परिभाषा
सर्वत्र प्राणी जगत की अभिलाषा
पर क्या आज भी है इसकी वही अवस्था?
क्या जारी है वही पुरानी व्यवस्था
इस बात पर चिंतन करता हूँ तो मन भर आता है
व्याकुल हो उठता हूँ कुछ नहीं सुहाता है
ना वो गरिमा रही इसकी, ना रहा वो अस्तित्व
दम तोड़ रही सम्पदा, हो रहा बर्बादी का स्वामित्व
बढ़ती मानव आबादी, विकसित होती सभ्यता
बढ़ती मानव लालसा, बढ़ता सामाजिक वैभव लिख रहा नयी पटकथा
कट रहे वृक्ष, दूषित होता पानी
ये मनुष्य कर रहा मनमानी
उजड़ रहे जंगल, किया जंतुओं का संहार
बने शहरों के जंगल, मच रहा हाहाकार
खत्म हो रही जैव संपदा, बिगड़ रहा पर्यावरण
दूषित होती जलवायु और हमारा आवरण
जैवविविधता का हो रहा है ह्रास, हो रहा उपहास
अपनी ही बर्बादी का, आज हो रहा है प्रयास
जो जंगल होते थे जीवन का आधार
आज उन्हीं का हो रहा व्यापार
कैसी ये विडम्बना कैसा ये आघात
गर्म होती धरती और बुरे होते हालात
ये ख़त्म होते जंगल और ये वीरानी
जीवन की ख़त्म होती कहानी

क्या यही थी कल्पना यही था पैमाना
जिस जंगल पर किपलिंग ने रची अपनी कहानी और तानाबाना
ऐसी तो ना थी उसकी कल्पना ना उसकी कहानी
पर क्यों हो गयी आज वो बेईमानी?
क्या आज का जंगल उसकी कहानी को आगे ले जाता?
क्या मोगली वहां रह पाता और जंगल का कोई गीत गाता?
जिसका जवाब शायद उसे भी पता ना होता
शायद मैं भी नहीं अगर उसकी जगह मैं होता
पर आज का इशारा किस ओर है?
क्या ये उम्मीद का अंतिम छोर है?
पर क्या करूँ मै एक आशावादी हूँ
निराशा को दूर करूँ, ऐसा विश्वासी हूँ
अब भी देर नहीं हुई है हे मानव
हटाले वो चेहरा जिसमें छिपा है दानव
करले अपने कर्मों पर पछतावा
और करले ये दावा
कि मिटा दूंगा अपने दुष्कर्मों की छाया
सीचूंगा फिर ये जंगल और इसकी काया
लौटा दूंगा इसे जो हमने इससे छीना
खाउंगा कसम फिर ऐसा हो कभी ना
यही उम्मीद करता हूँ अब मैं तुझसे
एक पक्का वादा कर मुझसे
कि रुडयार्ड किपलिंग के सपनों का जंगल वापस मिलेगा
और फिर से चड्डी पहन के फूल खिलेगा, फूल खिलेगा

सतीश चन्द्र आर्य
गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थानए
कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड।

राजभाषा हिन्दी पखवाड़ा के अन्त्रगत आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताएं/कार्यक्रम

मानक वर्तनी/हिन्दी अनुवाद प्रतियोगिता-2023

निबन्ध प्रतियोगिता-2023

नोटिग/ड्राफ्टिग प्रतियोगिता-2023

हिन्दी अनुवाद प्रतिय®गिता-2023

वाद-विवाद प्रतिय®गिता-2023

क्षेत्रीय कार्यान्वन कार्यालय (उत्तरी क्षेत्र-2), गाजियाबाद (उ0प्र0) के सहायक निदेशक (कार्यान्वन) द्वारा संस्थान के राजभाषा संबंधी निरीक्षण की झलकियॉ

गो0 ब0 पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान

(पर्यावरण वन एवम् जलवायु परिर्वतन मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)

कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

वेबसाइट: http://gbpihed.gov.in